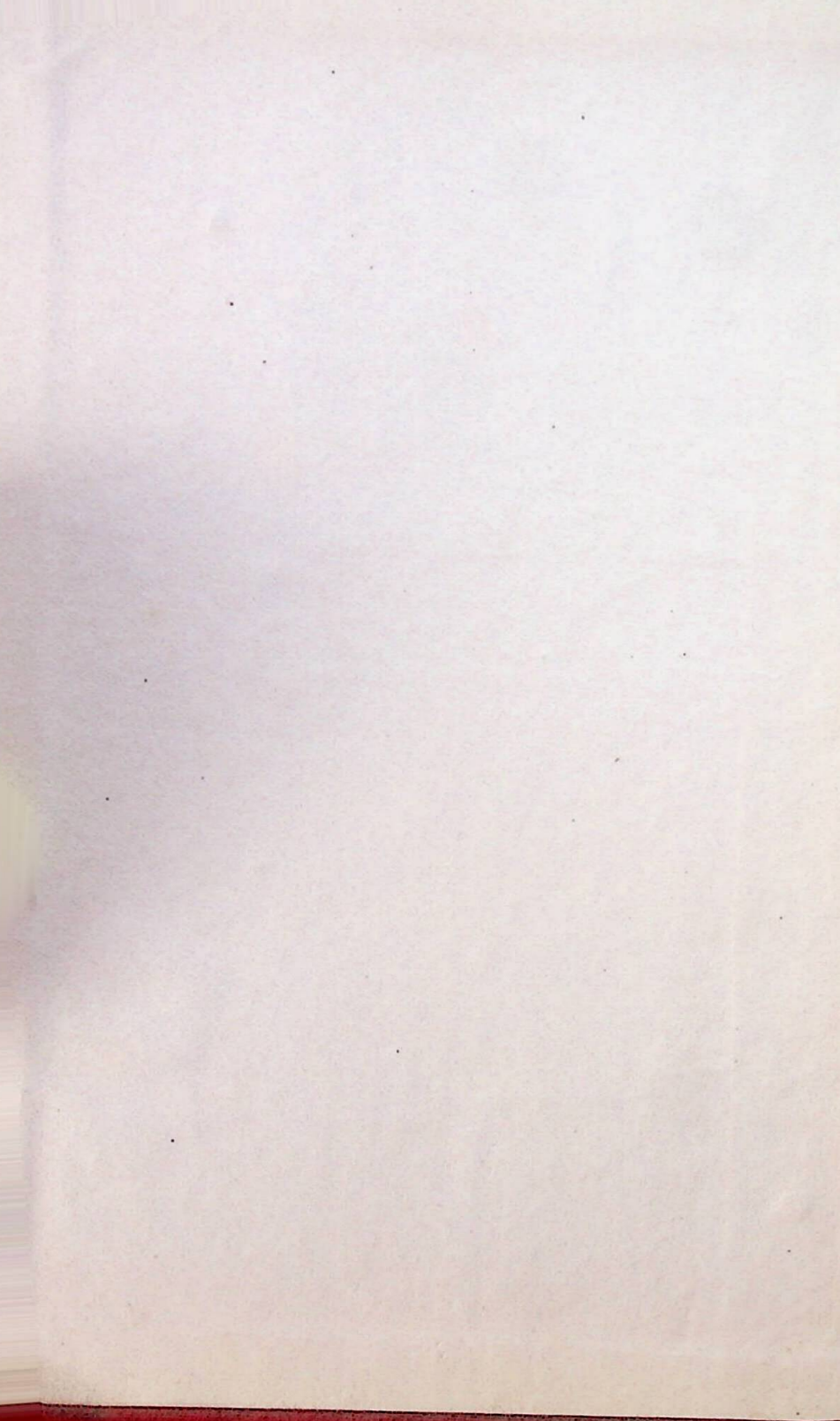


श्रीदेवणभट्टोपाध्यायविरचिता

स्मृतिचन्द्रिका

SMRTICANDRIKĀ















# स्मृतिचन्द्रिका

श्रीयाज्ञिकदेवणभट्टोपाध्यायरचिता

श्राद्धकाण्डः

आशौचकाण्डः

## SMRITICHANDRIKA

BY

DEVANĀ-BHATTA

EDITED BY

L. SRINIVASACHARYA

*Pandit, Govt. Oriental Library, Mysore*

IV. SRADDHAKANDA

V. ASAUCHA KĀNDA



नाग प्रकाशक

११ ए/यू. ए., जवाहर नगर, दिल्ली-७



This Publication has been brought out with the financial assistance from the Govt. of India, Ministry of Human Resource Development.

If any defect is found in this volume, please return the copy /PP for postage to the Publisher for free exchange.)

### **AG PUBLISHERS**

11A/ U.A. Jawahar Nagar, Delhi-110007

8A/3 U.A. Jawaharnagar, Delhi-110007

Jalalpur Mafi (Chunar-Mirzapur) U. P.

ISBN 81-7081-177-5 (Set)

**1988**

PRICE Rs.                      per set

**PRINTED IN INDIA**

Published by Nag Sharan Singh for Nag Publishers, 11A/U.A. Jawaharnagar, Delhi-110007 and printed at New Gian Offset Printers, Delhi.



## स्मृतिचन्द्रिकायां श्राद्धकाण्डस्थविषयानुक्रमणिका.

|  | पुटसङ्ख्या |
|--|------------|
| (1) श्राद्धमहिमा .....   | 1          |
| (2) श्राद्धभेदाः .....   | 4          |
| नित्यादिद्वादशश्राद्धनिरूपणम्.....   | ,,         |
| तेषां लक्षणानि .....   | ,,         |
| (3) श्राद्धाधिकारिनिर्णयः .....  | 5          |
| अनुपनीतस्यापि श्राद्धेऽधिकारः .....  | 6          |
| सति पुत्रे तस्यैवाधिकारः ...   | 7          |
| तदभावे सपिण्डादीनाम् .....   | 8          |
| पत्नीशब्दस्य द्वेधाऽर्थव्यवस्था....  | 9—10       |
| ‘न पुत्रस्य पिता कुर्यात्’ इत्यादि वचनं ज्ञेहविहीनापित्रादि-<br>विषयम् ..... | 11         |
| धनहारित्वादिनिमित्ताभावेऽपि श्राद्धे कृतेऽभ्युदयः .....                      | ,,         |
| असवर्णश्राद्धकरणे दोषः .....   | ,,         |
| (4) मातामहश्राद्धाधिकारिनिर्णयः .....  | 12         |
| दौहित्रेण मातामहश्राद्धमवश्यं कर्तव्यम् .....                                | ,,         |
| अकरणे दोषः .....   | ,,         |
| धनहारिणो दौहित्रस्यावश्यं नवश्राद्धादावप्यधिकारः .....                       | 13         |
| द्विविधः पुत्रिकापुत्रः .....  | ,,         |
| पुत्रिकापुत्रकर्तृत्वश्राद्धे विशेषः .....                                   | 14         |
| द्वयामुष्यायणे पुत्रिकापुत्रे विशेषः .....                                   | ,,         |
| क्षेत्रजे तु द्वयामुष्यायणे .....  | ,,         |



|   |      | पुटसङ्ख्या |
|---|------|------------|
| (5) जीवपितृकश्राद्धनिर्णयः                        | .... | .... 15    |
| जीवपितृकस्य पितामहादिश्राद्धेष्वनधिकारः           | .... | ... ”      |
| तस्यैव साग्निकस्य क्वचिदपवादः                     | .... | ... ”      |
| पित्रादिषु त्रिषु द्वयोरेकस्य वा मरणे             | .... | .... 16    |
| जीवपितृकस्य पिण्डपितृयज्ञादौ होमस्य पाक्षिकत्वम्  | .... | .... 17    |
| (6) श्राद्धकालाः                                  | .... | .... 18    |
| अमावास्यादिषु श्राद्धमवश्यं कर्तव्यम्             | .... | ... ”      |
| विषादिहतानां कृष्णचतुर्दश्यां श्राद्धं कार्यम्    | .... | .... 20    |
| अयनद्वये श्राद्धं नित्यम्                         | .... | .... 22    |
| शङ्खपद्मकादीनां लक्षणम्                           | .... | ... ”      |
| तीर्थद्रव्याद्युपपत्तौ श्राद्धमवश्यं कर्तव्यम्    | .... | .... 23    |
| गजच्छायादीनां लक्षणम्                             | .... | .... 24    |
| उपरागे श्राद्धं नित्यम्                           | .... | .... 26    |
| युगादिषु मन्वादिषु च श्राद्धमक्षय्यम्             | .... | .... 28    |
| (7) अमावास्याद्वैधनिर्णयः                         | .... | .... 30    |
| कुङ्कुमिनीवाल्यादीनां लक्षणम्                     | .... | .... ”     |
| तिथिद्वैधे कर्मकालव्यापिनी ग्राह्या               | .... | .... 32    |
| (8) अमावास्याविषयाणि                              | .... | .... 34    |
| अमाया नक्षत्रवारादिविशेषयोगे श्राद्धकरणे फलविशेषः | .... | .... 35    |
| (9) पर्वनिरूपणम्                                  | .... | .... 36    |
| राकानुमतिभेदेन पौर्णमासी द्विधा                   | .... | .... ”     |
| पर्वणि यागकालविचारः                               | .... | ... 37     |
| (10) तिथिद्वैधनिर्णयः                             | .... | .... 45    |
| संपूर्णायां तिथौ कर्मानुष्ठेयम्                   | .... | .... 46    |

|  |      |      |    |
|--|------|------|----|
| पक्षभेदेन मतान्तरेऽत्र विशेषः                                      | .... | .... | 48 |
| उदयव्यापिन्यास्तिथेरल्पत्वे तिथ्यन्तरेऽनुष्ठानम्                   | .... | .... | 49 |
| क्वचिदस्यापवादः  | ...  | .... | 51 |
| नक्तव्रते प्रदोषव्यापिनी तिथिग्राह्या                              | ...  | .... | „  |
| प्रदोषपरिमाणम्   | .... | .... | „  |
| दिनद्वयेऽपि प्रदोषव्यापित्तिथ्यलाभे-                               | ...  | ...  | 52 |
| नक्षत्रोपवासे विशेषः   | .... | .... | „  |
| (11) एकादशीमाहिमा  | .... | .... | 53 |
| (12) एकादशीनिर्णयः   | ...  | .... | 54 |
| एकादशीव्रतस्य नित्यत्वं, अकरणे दोषश्च                              | .... | .... | 55 |
| पक्षद्वयोपवासविधानस्य वानप्रस्थादिविषयत्वम्                        | .... | .... | „  |
| पुत्रवतो गृहस्थस्य कृष्णेकादश्यामुपवासनिषेधः                       | .... | .... | 56 |
| पक्षद्वयोपवासविधानं पुत्रवद्वृद्धिव्यतिरिक्तविषयम्                 | ...  | .... | 58 |
| मतान्तरे पुत्रवद्वृद्धस्थोपवासनिषेधव्याख्यानां काम्योपवासविषयत्वम् | .... | .... | 59 |
| नित्यनैमित्तिकयोर्नित्यं कार्यम्                                   | .... | .... | „  |
| उपवासलक्षणम्   | .... | .... | „  |
| उपवासग्रहणाविधिः   | .... | .... | 62 |
| एकादशीव्रतं सूतकादावपि कार्यम्                                     | .... | ...  | 63 |
| उपवासाशक्तौ  | .... | .... | 64 |
| (13) एकादशीद्वैधनिर्णयः  | .... | .... | 65 |
| संपूर्णेकादशीलक्षणम्   | .... | .... | „  |
| दशमीशेषस्योदयात्प्राचीनमुहूर्तद्वयाननुप्रवेशे उपवासः कर्तव्यः      | .... | .... | 66 |



|   | पुटसङ्ख्या |
|---|------------|
| दशमीशेषस्थोदयात्माचीनमुहूर्तद्वयानुप्रवेशे उपवासविचारः  | .... 67    |
| अरुणोदयलक्षणम्  | .... 69    |
| एकादशीदिनक्षये दशमीविद्धोपोध्या   | .... 70    |
| यस्मिन् दिनक्षये त्रयोदश्यामपि द्वादशी तस्मिन्नेवोपवासः कर्तव्यः                                | 71         |
| विद्धोपवासनिषेधपराणां वाक्यानामेकादशीदिनक्षयव्यतिरिक्तविषयत्वम्                                 | 72         |
| वेधसन्देहे  | .... 73    |
| उपवासनिषेधे यत्किञ्चिद्भक्ष्यकल्पनम्  | .... 76    |
| त्रयोदशीपारणनिषेधपाणि वाक्यानि त्रयोदश्यां द्वादशीसंभव-<br>विषयाणि                              | .... 78    |
| (14) अपराह्णनिर्णयः   | .... 80    |
| मतभेदेनापराह्णशब्दस्यानेकार्थत्वेऽपि मनूक्त एव ग्राह्यः   | .... 81    |
| कुतपशब्दनिर्वचनम्   | .... 82    |
| कुतपादी रौहिणाःतः श्राद्धकालः   | .... 83    |
| (15) श्राद्धकालविषयाणि  | .... 85    |
| कन्यागते सवितरि महालयाख्ये पञ्चमापरपक्षे श्राद्धं कर्तव्यम्                                     | .... 86    |
| ऐककालिकेषु श्राद्धेषु तन्त्रेण श्रपणं कृत्वा ज्येष्ठानुक्रमेण श्राद्धा-<br>नुष्ठानम्            | .... 90    |
| शस्त्रहतादीनां महालये चतुर्दश्यामेकोद्दिष्टश्राद्धे कृतेऽपि दिनान्तरे<br>पार्वणश्राद्धं कार्यम् | .... 92    |
| कृष्णपक्षे मखात्रयोदश्यां पितृवर्गस्य मातामहवर्गस्य च पार्वणमनु-<br>ष्ठेयम्                     | .... 96    |
| मातृश्राद्धममावास्यादिषु न पृथक्कर्तव्यम्   | .... 98    |
| अन्वष्टकादौ मातृश्राद्धं पृथगेव   | .... 99    |
| सवितुः कन्यागतत्वाभावे श्राद्धं न कार्यम्   | .... 101   |

|   |      |          |
|---|------|----------|
| आवश्यको विधिरधिमासेऽनुष्ठेयः                                  | .... | ... 106  |
| अधिमासे वर्ज्यानि   | .... | .... 109 |
| अधिमासे मृतानामधिमासेऽपि श्राद्धं कार्यम्                     | .... | .... 114 |
| संसर्पाहस्पतिसंज्ञौ मासौ नाधिमाधौ                             | .... | .... 116 |
| (17) मृताहविषयाणि   | .... | .... 117 |
| सौरसावनचान्द्रमासरूपणम्                                       | .... | .... 118 |
| सौरसावनचान्द्राहोरात्राणां भेदनिरूपणम्                        | ...  | .... 119 |
| सांवत्सारिकश्राद्धादावस्तगामिनी तिथिग्राह्या                  | ...  | ... 121  |
| (18) मृताहापरिज्ञानविषयाणि                                    | .... | .... 124 |
| (19) काम्यश्राद्धकालाः  | .... | .... 126 |
| संक्रान्त्यादौ पितृवृत्तयतिशयकाले पुत्रादिना श्राद्धं कार्यम् | .... | ... ,    |
| अयनादौ पुण्यकालविचारः   | ...  | .... 128 |
| उपरगे ग्रहणकाल एव श्राद्धं कर्तव्यम्                          | .... | .... 132 |
| मतान्तरेण काम्यश्राद्धकालनिरूपणम्                             | .... | .... 133 |
| काम्यार्थिनैव काम्यश्राद्धानि कार्याणि                        | .... | .... 137 |
| (20) गौणश्राद्धकालाः  | .... | .... 138 |
| अशौचादिप्राप्तौ श्राद्धक्रियायां कालविचारः                    | ...  | .... 139 |
| श्राद्धशब्दार्थनिरूपणम्                                       | .... | .... 141 |
| (21) श्राद्धदेशाः   | ...  | .... 142 |
| श्राद्धार्हदेशनिरूपणम्  | .... | .... ,   |
| निषिद्धदेशनिरूपणम्  | .... | ... 143  |



|  |      | पुटसङ्ख्या |
|--|------|------------|
| (22) काम्यश्राद्धदेशाः   | .... | .... 144   |
| काश्यादिक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनम्  | .... | .... 145   |
| सति संभवे गयादिषु सवर्णादिभ्योऽपि पिण्डदानादिकं कार्यम्                    |      | .... 151   |
| गयाश्राद्धे तत्रत्या एव ब्राह्मणा निमन्त्रणीयाः                            | .... | .... 152   |
| (23) श्राद्धे भोजनीयब्राह्मणनिरूपणम्                                       | ...  | .... 154   |
| निमन्त्रणात्प्रागेव ब्राह्मणान् परीक्षेत                                   | .... | .... ”     |
| लक्षण्या एव ब्राह्मणाश्च श्राद्धे नियोजनीयाः                               | .... | .... 155   |
| मुख्यकल्पलाभेऽनुकल्पानुष्ठानं दोषावहम्                                     | .... | .... 160   |
| सगुणानामनुकल्पानामभवे निर्गुणानामनुकल्पतया स्वीकारः                        |      | .... 162   |
| काले प्राप्तोऽतिथिरवश्यं भोजनीयः   | .... | .... 166   |
| (24) श्राद्धे वज्र्या ब्राह्मणाः   | .... | .... ”     |
| सत्यपि ज्येष्ठे कनिष्ठेन दाराभिहोत्रसंबन्धे कृते परिवेदनदोषाभाव-<br>विचारः | .... | .... 172   |
| देशान्तरस्थेऽष्टवर्षादिकालः प्रतीक्षणीयः                                   | .... | .... 174   |
| अत्र विषयविशेषविचारः   | .... | .... 175   |
| सत्यपि ज्येष्ठे कनिष्ठस्याधानप्राप्तिविचारः                                | .... | .... 176   |
| कुण्डगोलकशब्दार्थः   | .... | .... 179   |
| अकारणपरित्यक्तादिशब्दार्थविचारः  | .... | .... 182   |
| पङ्क्तिदूषकपङ्क्तिपावनलक्षणम्....  | .... | 187—188    |
| (25) श्राद्धदिनाः प्राचीनदिनकृत्यम्  | .... | .... 189   |
| देवपित्रर्थे ब्राह्मणनिमन्त्रणम्   | .... | .... 190   |
| पैतृके वैश्वदेवे च ब्राह्मणसंख्याविभागः                                    | .... | .... 191   |
| निमन्त्रणप्रकारः   | ...  | .... 194   |
| निमन्त्रितब्राह्मणपरित्यागे दोषभूयस्त्वम्                                  | .... | .... 197   |

|   |      |     |
|---|------|-----|
| श्राद्धीयपक्वान्नादिद्रव्याण्यप्रशस्तप्राणिदर्शनाद्रक्षितव्यानि | ...  | 206 |
| (27) श्राद्धकर्मणि वर्ज्यद्रव्याणि                              | .... | 210 |
| एकस्यैव विधिप्रतिषेधयोर्दर्शने विकल्पः                          | .... | 211 |
| श्राद्धे राजप्रासादीनां प्रतिषेधः                               | ..   | 212 |
| (28) नित्यभोजने वर्ज्यद्रव्याणि                                 | .... | 223 |
| शुक्तपर्युषितद्रव्याणि वर्ज्यानि                                | .... | 224 |
| पर्युषितविशेषाणां भक्षणाभ्यनुज्ञा                               | ...  | 226 |
| आपदि शुक्तस्यापि प्रक्षालितस्य भक्षणार्हता                      | .... | 228 |
| जात्या दुष्टानि लशुनपृञ्जनादान्यभक्ष्याणि                       | .... | 231 |
| वर्ज्यक्षीराणि  | .... | 233 |
| निषिद्धक्षीराविकाराणां भक्षणे प्रायश्चित्तम्                    | .... | 236 |
| आश्रयदुष्टान्यन्नादानि न भोज्यानि                               | ...  | 238 |
| (29) नित्यभोजने वर्जनीयमांसद्रव्यविषयाणि                        | .... | 244 |
| निषिद्धमांसभक्षणे प्रायश्चित्तम्                                | .... | 246 |
| अप्रतिषिद्धानां मांसं भक्ष्यम्                                  | .... | 249 |
| (30) श्राद्धे तृप्तयतिशयहेतुभूतद्रव्यविषयाणि                    | ...  | 252 |
| वाघ्राणसादिमांसानां तृप्तयतिशयहेतुत्वम्                         | .... | 256 |
| (31) श्राद्धदिनपूर्वाह्नकृत्यशेषः                               | .... | 258 |
| कुशाभावे काशादिपरिमहः   | .... | 259 |
| दौहित्रपदव्याख्यानम्  | .... | 262 |
| कुतपशब्दस्याष्टावर्थाः  | .... | ..  |



|      |  | पुटसङ्ख्या |
|------|--|------------|
|      | श्राद्धार्हपुष्पधूपद्रव्यवस्त्राद्याहरणम्                              | .... 263   |
| (32) | श्राद्धदिनापराहकृत्यम् ...   | .... 268   |
|      | पित्रयं सर्वमप्रदक्षिणं प्राचीनावीतिना, वैश्वदैविकं कर्म यज्ञोपवी-     |            |
|      | तिना प्रदक्षिणं कार्यम्  | .... 269   |
|      | प्रक्षालितपदान्विप्रानासनेषूपवेशयेत्                                   | .... 271   |
|      | उपवेशनप्रकारः  | .... 274   |
| (33) | अवान्तरसंकल्पादिकृत्यम्  | .... 280   |
|      | वाह्यणाभ्यनुष्ठानन्तरं श्राद्धभूमौ तिलविकिरणादि सर्वं क्रमेणानुष्ठेयम् | 282        |
|      | विश्वेदेवावाहनप्रकारः  | .... 284   |
|      | श्राद्धविशेषेषु विशेषां देवानां विशेषणामानि प्रयोज्यानि                | .... 285   |
| (34) | वैश्वदैविकार्चनविधिः   | .... 290   |
|      | अर्घ्यपात्रादिषु विशेषः  | .... 291   |
|      | गन्धदानादिकृत्ये प्रयोगसरणिः   | .... 294   |
| (35) | पैतृकार्चनविधिः  | .... 295   |
|      | पित्राद्यावाहने श्राद्धकर्तुरतीताः पूर्वपुरुषाः पितृपितामहप्रपिता-     |            |
|      | महा प्राद्याः  | .... 296   |
|      | पितृनुद्दिश्य श्राद्धे दत्तमन्नं कथं तान् प्राप्नोतीत्यनुपपत्तिनिरा-   |            |
|      | करणम्  | .... 298   |
|      | श्राद्धे वस्त्रादिरूपेण पित्राद्योऽनुसन्धेयाः                          | .... 300   |
|      | पार्वणादिश्राद्धे पित्रादीनां सपत्निकानां तृप्तिर्न केवलानाम्          | ... 301    |
|      | पितृणामासनदानावाहनादौ प्रयोगसरणिः                                      | .... 303   |
| (36) | अर्घ्याद्युपचारविधिः   | .... 305   |
|      | गन्धानुलेपनादौ विशेषः  | ... 313    |
| (37) | अग्नौकरणविधिः  | .... 317   |

पैतृकत्वादग्नौकरणं प्राचीनावीतिना कार्यम् ....

(38) उभयविधाग्नौकरणार्थाग्निनिर्णयः ....

अग्निकस्य द्विजपाणावप्सु वेत्युभयविधमग्नौकरणम्

अप्स्विति पक्षे विषयविशेषः ....

पाणिहोमपक्षे ग्रीहियववत्पित्र्यवैश्वदैविकब्राह्मणपाण्योर्विकल्पः

हुतशेषस्य पितृब्राह्मणभोजनपात्रेष्वेव निक्षेपः ....

सत्यपि ब्राह्मणबाहुल्ये प्रथमोपविष्टस्यैव पाणौ होमः

पाणौ हुतस्य तदानीमेव भोजने निषेधः ..

(39) परिवेषणविधिः ....

पात्रप्रक्षाळनम् ....

परिवेषणकर्तृनिरूपणम् ....

देवपूर्वं परिवेषणम् ....

परिवेषणानन्तरमभ्युक्षणावोक्षणादिकृत्यम् ....

अन्नत्यागप्रकारः ....

भोक्तुमुपक्रान्तेषु ब्राह्मणेषु श्राद्धकर्तुः कर्तव्यम् ....

अपेक्षितस्यायाचने याचितस्याप्रदाने च दोषभूयस्त्वम्

भोजनकालेऽश्रुपातनादिनिषेधः ....

(40) निमन्त्रितब्राह्मणविषयाणि ....

भोजनकाले भोक्तृनियमाः ....

(41) अन्नविकिरणादिविधिः....

विकिरणानन्तरं श्राद्धकर्तुरनाचमने दोषः ...

SMRITI CHA.—VOL. V.



|   |      |      | पुटसङ्ख्या |
|---|------|------|------------|
| (42) पिण्डदानविधिः  | .... | .... | .... 361   |
| पिण्डनिर्वापणकालस्य यथास्वशाखं व्यवस्था                         | .... | .... | .... 362   |
| पितृसेवितावशिष्टभोजनं नित्यम्                                   | .... | .... | .... 364   |
| क्वचित्प्रत्याग्रायः  | .... | .... | .... ,,    |
| पिण्डनिर्वापणस्थाने कर्तव्यादि                                  | .... | .... | .... 365   |
| पिण्डप्रदाने मन्त्राः   | .... | .... | .... 368   |
| पिण्डदाने यजमनस्य पूर्वपुरुषा एव देवता न वस्वादयः               | .... | .... | .... 369   |
| अत्र वाक्यान्तरविरोधे परिहारः                                   | .... | .... | .... 370   |
| पिण्डप्रमाणम्   | .... | .... | .... 371   |
| पिण्डनिर्वापणानन्तरकृत्यम्                                      | ...  | .... | .... 372   |
| पिण्डार्चने विशेषः  | .... | .... | .... 376   |
| पिण्डचालनानन्तरमग्नौकरणार्थं प्रति गच्छेत्                      | .... | .... | .... 377   |
| मातामहर्षिद्विधा कृत्स्नपितृश्राद्धकल्पस्यातिदेशः               | .... | .... | .... ,,    |
| (43) पिण्डदानप्रयोगसरणिः  | .... | .... | ... 379    |
| (44) पिण्डदानविषयाणि  | .... | .... | .... 382   |
| गृह्ये विधानान्तरानुक्तौ पिण्डपितृयज्ञकल्पनैव पिण्डदानं कार्यम् | .... | .... | .... 383   |
| नामगोत्रादीनामपरिज्ञाने   | .... | ..   | ... 388    |
| (45) ब्राह्मणभोजनात्मकप्रधानपाश्चात्याङ्गविषयाणि                | .... | .... | .... ,,    |
| भुक्तवद्भयो ब्राह्मणेभ्य आशीर्वादग्रहणप्रकारः                   | .... | .... | .... 389   |
| पात्रचालनकर्तृविषये विधिप्रतिषेधौ                               | .... | .... | .... 391   |
| स्वस्तिवाचनप्रयोगः  | ..   | .... | .... ,,    |
| अक्षय्योदकदानम्   | .... | .... | .... ,,    |
| दक्षिणात्वेन देयवस्तुनिरूपणम्                                   | .... | .... | ... 392    |
| दक्षिणादानप्रयोगः   | .... | ..   | .... 394   |

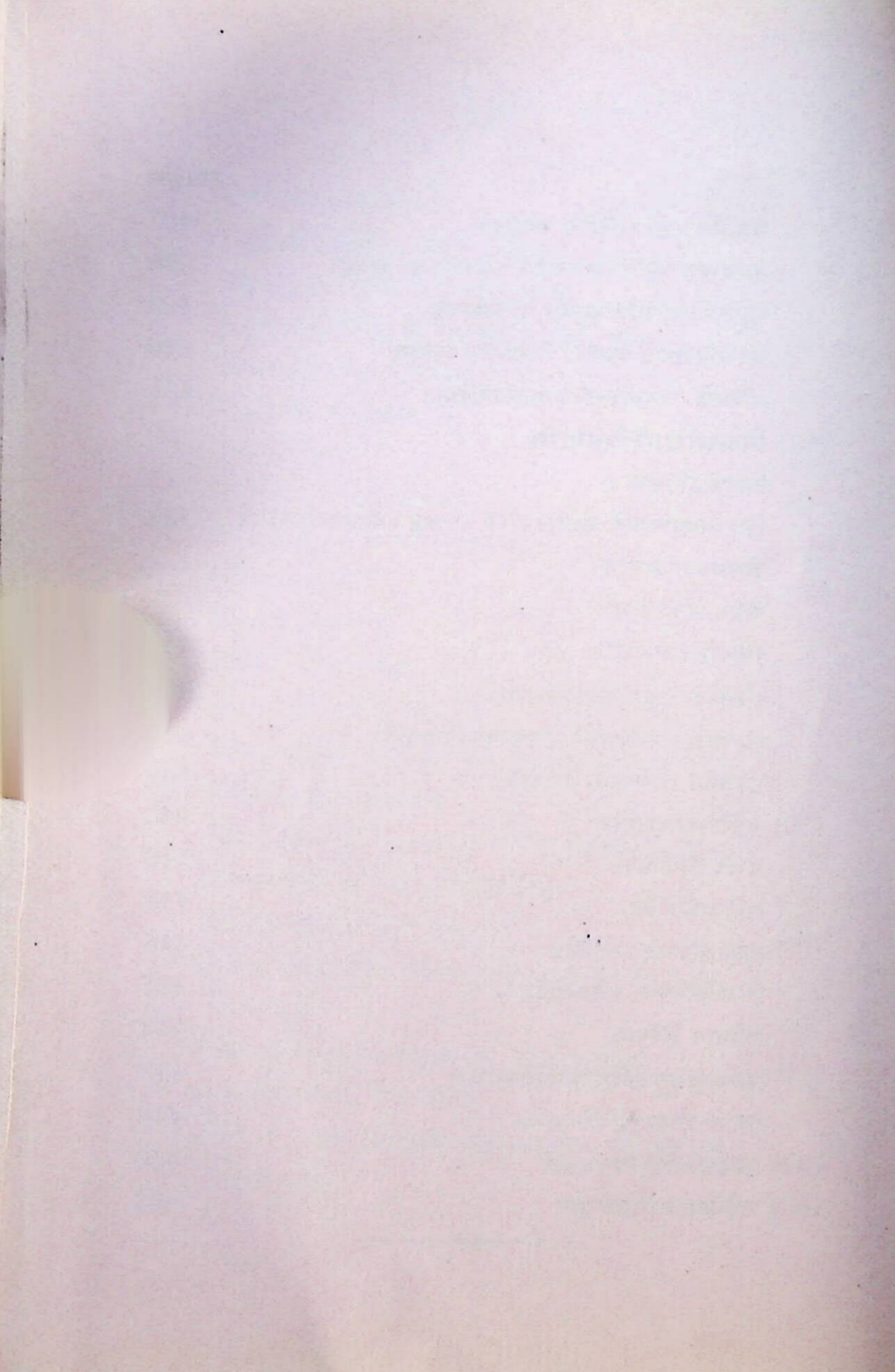
|   |      |     |
|---|------|-----|
| प्रियोक्तिपूर्वकं स्वस्थानं प्रति ब्राह्मणविसर्जनम् ....                | .... | 401 |
| (46) पिण्डप्रतिपत्त्यादिविषयाणि ....                                    | .... | 402 |
| कर्तुः पुत्रार्थत्वाभावे अग्निजलादिषु पिण्डप्रक्षेपणम् ....             | .... | „   |
| सति पुत्रार्थित्वे पत्नी मध्यमपिण्डं प्राश्रियात् ....                  | .... | „   |
| तीर्थश्राद्धे पिण्डानामप्येव प्रतिपत्तिः ....                           | .... | 404 |
| पिण्डप्रक्षेपणानन्तरं द्विजोच्छिष्टशोधनम् ....                          | .... | „   |
| अत्र विषयविशेषविचारः ....   | .... | 405 |
| श्राद्धदिने वैश्वदेवानुष्ठानकालविचारः ....                              | .... | 406 |
| श्राद्धादौ पृथक्पाकाद्वैश्वदेवकरणे न दोषः ....                          | .... | 407 |
| अत्र नित्यश्राद्धविचारः ....  | .... | 408 |
| वैश्वदेवार्थं पृथक्पाके कृतेऽपि पित्रर्थपाकादेव भोजनम् ....             | .... | 409 |
| पितृसेवितस्य भोजनप्रकारः ....   | .... | „   |
| विप्रैरेव श्राद्धशिष्टान्ने गृहीते अन्नान्तरं संपाद्य भोक्तव्यम् ....   | .... | 410 |
| अनुज्ञापक्ष एव पितृसेवितभोजनियमः ....                                   | .... | „   |
| पितृसेवितमपि माषमांसादिकमन्वाधानदिने कृतान्वाधानेन न<br>भोक्तव्यम् .... | .... | „   |
| सत्यापि नियमे व्रतिनः वैधमाचरतो न व्रतभङ्गः ....                        | .... | 411 |
| दातृभोक्तोर्नियमान्तराणि ....   | .... | 412 |
| श्राद्धकर्तुः फलनिरूपणम् ....   | .... | 413 |
| (47) यथाशक्ति पार्वणानुष्ठानविधिः ....                                  | .... | 414 |
| पात्रासंपत्तौ ....  | .... | „   |



|   |      | पुटसङ्ख्या |
|---|------|------------|
| एकस्यापि ब्राह्मणस्यालामे ....  | .... | .... 415   |
| पक्षद्रव्यसंपादनासंभवे आमश्राद्धेऽधिकारः ....   | .... | .... 416   |
| सर्वश्राद्धेषु शूद्रः पार्वणविधानेनाममेव दद्यात् ....                                     | .... | .... ,     |
| लब्धक्रीतादिपक्षान्नसद्भावेऽप्यामश्राद्धमेव द्विजैः कार्यम्                               | .... | .... 417   |
| पाकसामग्रीसद्भावेऽप्यनभिकादिनाऽऽमश्राद्धं कार्यम्   | .... | .... ,     |
| पक्षेनैव श्राद्धं क्वचिदवश्यकम् .. .  | .... | .... ,     |
| आमश्राद्धे विशेषः ....  | .... | .... 418   |
| आमद्रव्यस्याप्यसंभवे हेमश्राद्धम्   | .... | .... 419   |
| आमश्राद्धे हेमश्राद्धे च कर्तव्यांशस्य भेदः ....  | .... | .... ,     |
| हेमद्रव्यस्याप्यलामे ....   | .... | .... 420   |
| श्राद्धाङ्गसंपादनासंभवे ....  | .... | .... ,     |
| विस्मृतपार्वणानुष्ठानासंभवे ....  | .... | .... ,     |
| संकल्पश्राद्धपार्वणश्राद्धयोर्भेदप्रदर्शनम् ....  | .... | .... 421   |
| अनुकल्पानुष्ठानेऽपि शाब्दाभावे सति मुख्यकल्पानुष्ठानफलं भवति ....                         | .... | .... ,     |
| (48) प्रतिसांवत्सरिकश्राद्धम् ....  | .... | .... 422   |
| यजमानस्यासामर्थ्ये, कारणान्तरेण कालातिपत्तौ वाऽन्यश्राद्धं कुर्यात् ,,                    | .... | ....       |
| आब्दिकं मासिकं च श्राद्धं पार्वणवदनुष्ठेयम् ...   | .... | .... 423   |
| पितृभृताहे मातामहादिश्राद्धं न कार्यम् ....   | .... | .... 424   |
| पैतृकस्य मातामहश्राद्धस्य च अमावास्यादिकाले यौगपद्यं, समान-<br>तन्त्रत्वं च ....          | .... | .... 425   |
| मातापित्रोस्सांवत्सरिकश्राद्धकालस्यैक्ये कर्तव्यांश्चविचारः ....                          | .... | .... 426   |
| मातापित्रोर्युगपन्नरणे पौर्वापर्यज्ञाने ....  | .... | .... ,     |
| आत्रादीनां सांवत्सरिकश्राद्धदिनैक्ये श्राद्धमनेकं ज्येष्ठादिक्रमेण<br>पृथगेव कार्यम् .... | .... | .... ,     |

|   |      | पुटसङ्ख्या |
|---|------|------------|
| अत्र वाक्यान्तरेण विरोधे तत्परिहारः                                   | .... | ... 427    |
| मृताहश्वाद्धं पार्वणविधानेनेकोद्दिष्टविधानेन वा कार्यम्               |      | ... 428    |
| बहुसम्मतत्वात्पार्वणपक्षस्यैव परिग्राह्यत्वम्                         | .... | .... 429   |
| परस्परविरुद्धानां स्मृतीनां विषयभेदेन व्यवस्था                        |      | .... 430   |
| अविभक्तैः प्रतिसांवत्सरिकश्राद्धकरणविषयः                              | ...  | .... 431   |
| (49) नित्यश्राद्धादिविषयाणि   | .... | .... ,,    |
| नित्यश्राद्धनिरूपणम्  | .... | .... ,,    |
| नित्यश्राद्धमुक्तकाले पार्वणविधानेन यथःश्राद्धं यथासामर्थ्यमनुष्ठेयम् |      | .... 432   |
| काम्यश्राद्धनिरूपणम्  | .... | .... ,,    |
| वृद्धिश्राद्धनिरूपणम्   | .... | .... ,,    |
| वृद्धिश्राद्धकालविचारः  | .... | .... 433   |
| वृद्धिश्राद्धे कर्तव्यविशेषनिरूपणम्                                   | .... | .... 434   |
| वृद्धिश्राद्धे पैतृकप्रचारोणि दैविकप्रचारवदाश्रयणीयः                  |      | .... 436   |
| वृद्धिश्राद्धे आवाहनादौ प्रयोगभेदः                                    | .... | .... 439   |
| (50) वृद्धिश्राद्धप्रयोगः   | .... | .... 441   |
| अर्थ्यप्रदाने विशेषः  | .... | .... 442   |
| अमौकरणे विशेषः  | .... | .... 443   |
| तृप्तिप्रश्नपिण्डदानयोर्विशेषः  | .... | .... 444   |
| पिण्डार्चनानन्तरं कर्तव्यविशेषः                                       | .... | .... 445   |
| पार्वणस्य द्वैविध्यम्   | .... | .... 446   |
| (51) अन्यदाश्रयुदयिककर्मानिरूपणम्                                     | .... | .... 446   |
| तत्र मातरस्सगणाधिपाः पूज्याः  | .... | .... 448   |
| (52) कर्माङ्गश्राद्धविषयाणि   | .... | .... 450   |
| (53) तीर्थश्राद्धविषयाणि  | .... | .... 451   |





# स्मृतिचन्द्रिका

श्री याज्ञिकदेवणभट्टोपाध्याय विरचिता

श्राद्धकाण्डः

---

SMRITICHANDRIKA

BY

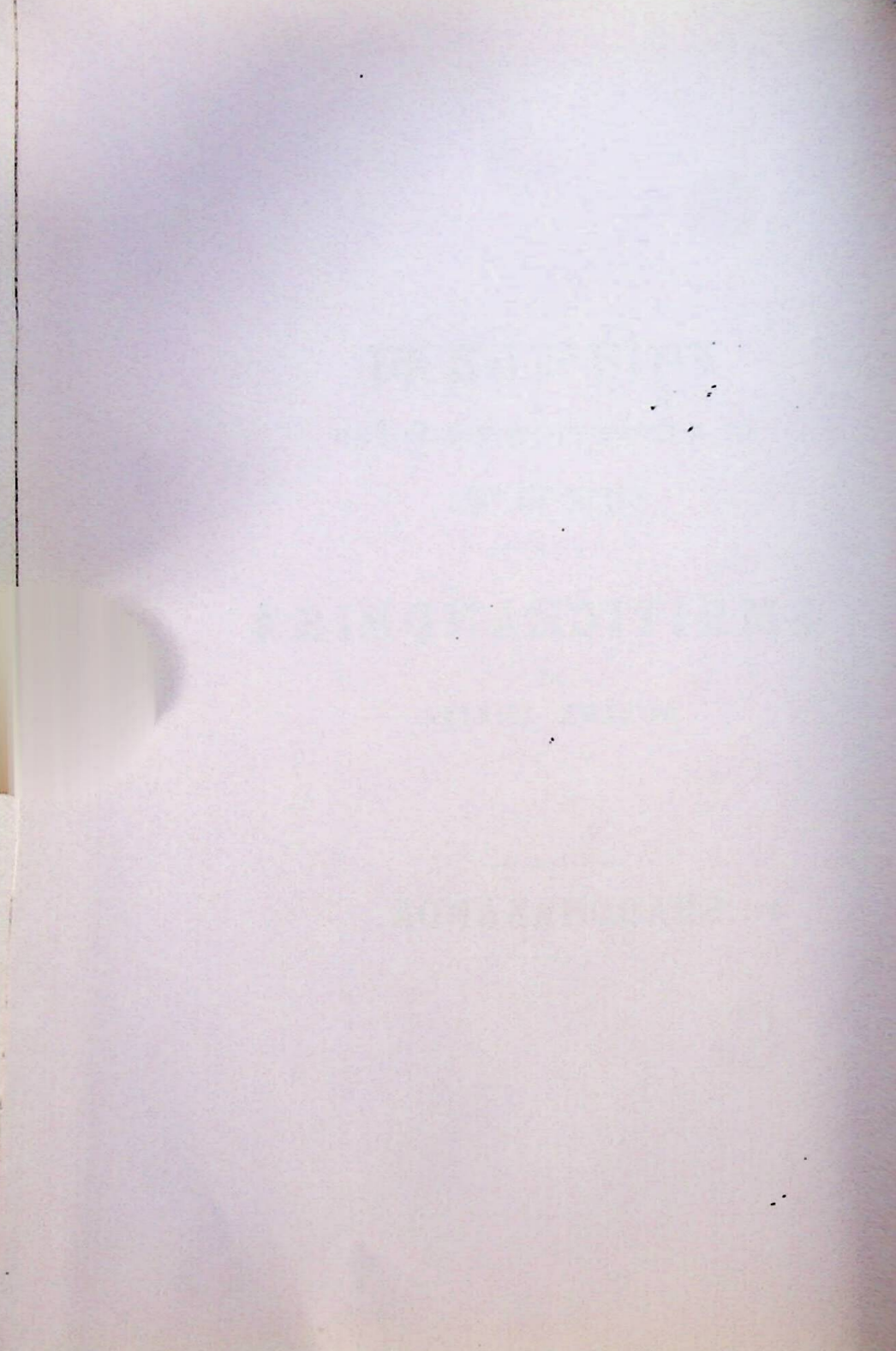
DEVANA BHATTA

---

IV. SRADDHAKANDA

---





श्रीः.

# स्मृतिचन्द्रिका

श्राद्धकाण्डप्रारम्भः.



उक्तमाह्निके नित्यश्राद्धं, अधुना तत्प्रसङ्गाच्छ्राद्धप्रकरण-  
मारभ्यते

तत्रादौ श्राद्धमहिमा । तत्र सुमन्तुः—

श्राद्धात्परतरं नान्यच्छ्रेयस्करमुदाहृतम् ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः ॥

देवलोऽपि—

अरोगः प्रकृतिस्थश्च चिरायुः पुत्रपौत्रवान् ।

अर्थवानर्थकामी च श्राद्धकामो भवेदिह ॥

परत्र च परां तुष्टिं लोकांश्च विविधान् शुभान् ।

श्राद्धकृत्समवाप्नोति यशश्च विपुलं नरः ॥

याज्ञवल्क्योऽपि —

आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च ।

प्रयच्छन्ति तथा राज्यं प्रीता नृणां पितामहाः ॥

यमोऽपि—

ये यजन्ति पितॄन् देवान् ब्राह्मणान् सहुताशनान् ।

सर्वभूतान्तरात्मानं विष्णुमेव यजन्ति ते ॥



आयुः पुत्रान् यशस्वर्गं कीर्तिं पुष्टिं बलं श्रियम् ।  
पशून् सुखं धनं धान्यं प्राप्नुयात्पितृपूजनात् ॥

मार्कण्डेयपुराणेऽपि—

पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।  
पिण्डसम्बन्धिनो ह्येते विज्ञेयाः पुरुषास्त्रयः ॥  
लेपसम्बन्धिनस्त्वन्ये पितामहपितामहात् ।  
प्रभृत्युक्तास्त्रयस्तेषां यजमानश्च सप्तमः ॥  
तथाऽन्ये पूर्वजास्स्वर्गे येचान्ये नरकौकसः ।  
ये च तिर्यक्त्वमापन्ना ये च भूतादिसंस्थिताः ॥  
तांस्सर्वान्यजमानो वै श्राद्धं कुर्वन्त्यथाविधि ।  
समाप्याययते वत्स येन येन शृणुष्व तत् ॥  
अन्नप्रकिरणं यत्तु मनुष्यैः क्रियते भुवि ।  
तेन तुष्टिमुपायान्ति ये पिशाचत्वमागताः ॥  
यदम्बु स्नानवस्त्रोत्थं भूमौ पतति पुत्रक ।  
तेन ये तरुतां प्राप्तास्तेषां तृप्तिः प्रजायते ॥  
यास्तु गन्धाम्बुकणिकाः पतन्ति धरणीतले ।  
ताभिराप्यायनं तेषां ये देवत्वं कुले गताः ॥  
उद्धृतेषु तु पिण्डेषु याश्चात्र कणिका भुवि ।  
ताभिराप्यायनं तेषां ये तिर्यक्त्वं कुले गताः ॥  
ये चादन्ताः कुले बालाः क्रियायोग्या ह्यसंस्कृताः ।  
विपन्नास्ते तु विकिरसंमार्जनजलाग्निनः ॥

भुक्त्वा चाचमतां यच्च जलं यच्चाङ्घ्रिसेचने ।  
 ब्राह्मणानां तथैवान्ये तेन तृप्तिं प्रयान्ति वै ॥  
 तेनानेककुले तत्र तत्तद्योन्यन्तरं गताः ।  
 प्रयान्त्याप्यायनं वत्स सम्यक् श्राद्धक्रियावताम् ॥

बृहस्पतिरपि—

य एवं वेत्ति मतिमांस्तस्य श्राद्धफलं भवेत् ।  
 उपदेष्टाऽनुमन्ता च लोके तुल्यफलौ स्मृतौ ॥  
 इमं श्राद्धविधिं पुण्यं कुर्याद्वाऽपि पठेत्तु यः ।  
 सर्वकामैस्स वध्नाति ह्यमृतत्वं च विन्दति ॥

तथाऽकरणेऽपि दोषस्तेनैव दर्शितः—

न तत्र वीरा जायन्ते नारोगा न शतायुषः ।  
 न च श्रेयोऽधिगच्छन्ति यत्र श्राद्धं विवर्जितम् ॥

आदित्यपुराणेऽपि—

न सन्ति पितरश्चेति कृत्वा मनसि यो नरः ।  
 श्राद्धं न कुरुते तत्र तस्य रक्तं पिबन्ति ते ॥  
 तथा धनाशुद्धावपि दोषो मार्कण्डेयपुराणे दर्शितः—  
 अन्यायोपार्जितैर्द्रव्यैर्यच्छ्राद्धं क्रियते नरैः ।  
 तृप्यन्ति तेन चण्डालाः पुल्कसाद्याश्च योनयः ॥ इति ॥

इति स्मृतिचन्द्रिकायां श्राद्धमहिमा.



## अथ श्राद्धभेदाः.

तत्र विश्वामित्रः—

निसं मैमित्तिकं काम्यं वृद्धिश्राद्धं सपिण्डनम् ।

पार्वणं चेति विज्ञेयं गोष्ठ्यं शुद्धचर्थमष्टमम् ॥

कर्माङ्गं नवमं प्रोक्तं दैविकं दशमं स्मृतम् ।

यात्रास्वेकादशं प्रोक्तं पुष्ट्यर्थं द्वादशं स्मृतम् ॥

तत्र नित्यनैमित्तिकयोर्लक्षणं पारस्करेणोक्तम्—

अहन्यहानि यच्छ्राद्धं तन्नित्यमिति कीर्तितम् ।

वैश्वदेवविहीनं तु अशक्तोप्युदकेन तु ॥

एकोद्दिष्टं तु यच्छ्राद्धं तन्नैमित्तिकमुच्यते ।

तदप्यदैवं कर्तव्यमयुग्मानाशयेद्विजान् ॥ इति ॥

काम्यादीनां लक्षणं वृद्धवसिष्ठेनोक्तम्—

अभिप्रेतार्थसिद्ध्यर्थं काम्यं पार्वणवत्स्मृतम् ।

पुत्रजन्मविवाहादौ वृद्धिश्राद्धमुदाहृतम् ॥

नवानीतार्थपात्रं च पिण्डश्च परिकीर्यते ।

पितृपात्रेषु पिण्डेषु सपिण्डीकरणं तु तत् ॥

प्रतिपर्व भवेद्यस्मात् प्रोच्यते पार्वणं तु तत् ।

गोष्ठ्यां यत्क्रियते श्राद्धं गोष्ठीश्राद्धं तदुच्यते ।

बहूनां विदुषां प्राप्तौ सुखार्थं पितृवृत्तये ॥

इति । शुद्धचर्थस्य लक्षणं प्रचेतसोक्तम्—

क्रियते शुद्धये यत्तु ब्राह्मणानां तु भोजनम् ।

शुद्धयर्थमिति तत्प्रोक्तं श्राद्धं पार्वणवत्कृतम् ॥

कर्माङ्गादीनां लक्षणं पारस्करेणोक्तम्—

निषेककाले सोमे च सीमन्तोन्नयने तथा ।

ज्ञेयं पुंसवने श्राद्धं कर्माङ्गं विधिवत्कृतम् ॥

देवानुद्दिश्य क्रियते यत्तद्वैविकमुच्यते ।

तन्नित्यश्राद्धवत्कुर्याद्द्वादश्यादिषु यन्नतः ॥

गच्छन् देशान्तरं यद्धि श्राद्धं कुर्यात्तु सर्पिषा ।

तद्यात्रार्थमिति प्रोक्तं प्रवेशे च न संशयः ॥ इति ।

अत्र कर्माङ्गवचनमकरणे कर्मवैगुण्यज्ञापनार्थम् । सर्पिषा  
सर्पिःप्रधानकेनेत्यर्थः । अन्यथा केवलेन तृप्तेरशक्यत्वात् ॥

इति स्मृतिचन्द्रिकायां श्राद्धभेदाः.

अथ श्राद्धाधिकारिनिर्णयः

तत्र बृहस्पतिः—

प्रमीतस्य पितुः पुत्रैः श्राद्धं देयं प्रयन्नतः ।

ज्ञातिबन्धुसुहृच्छिष्यऋत्विग्भृत्यपुरोहितैः ॥ इति ॥

पुत्राभाव इति शेषः । पितुर्ग्रहणं मातुरपि प्रदर्शनार्थम्—

अत एव सुमन्तुः—

मातुः पितुः प्रकुर्वीत संस्थितस्यौरसस्मृतः ॥ इति ।

एतदनुपनतिनापि कार्यम् । तदाह सुमन्तुः—

श्राद्धं कुर्यादवश्यं तु प्रमीतपितृको हि यः ।



व्रतस्थो वाऽव्रतस्थो वा एक एव भवेद्यदि ॥

अव्रतस्थोऽनुपनीतः । अत एव वृद्धमनुः—

कुर्यादनुपनीतोपि श्राद्धमेको हि यस्सुतः ।

पितृयज्ञाहुतिं पाणौ जुहुयाद्ब्राह्मणस्य सः ॥ इति ।

अत्र विशेषमाह व्याघ्रः—

कृतचौलस्तु कुर्वीत उदकं पिण्डमेव च ।

स्वधाकारं प्रयुञ्जीत वेदोच्चारं न कारयेत् ॥

मातापित्रोरिति शेषः । स्मृत्यन्तरेऽपि—

कृतचूडोऽनुपेतस्तु पित्रोश्श्राद्धं समाचरेत् ।

उदाहरेत्स्वधाकारं न तु वेदाक्षराण्यसौ ॥ इति ॥

वेदाक्षराण्यपि प्रयोक्तव्यानीत्याह—

न ह्यस्मिन् युज्यते कर्म किञ्चिदामौञ्जिवन्धनात् ।

नाभिव्याहारयेद्ब्रह्म स्वधानिनयनादते ॥ इति !

एवञ्चात्र विकल्पो द्रष्टव्यः । पुत्राभावे तु शशोक्तम्—

पितुः पुत्रेण कर्तव्याः पिण्डदानोदकक्रियाः ।

पुत्राभावे तु पत्नी स्यात् पत्न्यभावे तु सोदरः ॥

इति । पुत्रग्रहणेनात्र मुख्या गौणाश्च गृह्यन्ते—

पिण्डदोऽशहरश्चैषां पूर्वाभावे परःपरः ।

इति याज्ञवल्क्यस्मरणात् । अतो द्विविधपुत्राभावे 'पुत्राभावे तु पत्नी स्यात्' इति वचनार्थः । तदपि पौत्राभावविषयम्—

पौत्रोथ पुत्रिकापुत्रः स्वर्गप्राप्तिकरावुभौ ।

रिक्थे च पिण्डदाने च समौ तौ परिकीर्तितौ ॥

इति बृहस्पतिना गौणपुत्रसामान्याभिधानात् । न चैवं पिण्ड-  
दाने पुत्रपौत्रयोर्विकल्पस्स्यादिति शङ्कनीयम्,

पुत्रेषु विद्यमानेषु नान्यो वै कारयेत्स्वधाम् ।

इति ऋश्यशृङ्गस्मरणात् ।

नैतत्पौत्रेण कर्तव्यं पुत्रवांश्चेत्पितामहः ।

इति कात्यायनस्मरणात् । पुत्राभावे तु पत्नी स्यादिसेतद्यज्ञ-  
पत्न्या दायहरत्वात्तद्विषयम् । अन्यथा तु यो दायहरस्स एव  
दद्यात् । अत एव विष्णवापस्तम्बौ 'यश्चार्थहरस्स पिण्डदायी,  
पुत्रः पितृवित्ताभावे पिण्डं दद्यात्' इति । अत एव याज्ञव-  
ल्क्येनाऽपि—

पिण्डदोऽशहरश्चैषां पूर्वाभावे परः परः । इति

पिण्डदत्त्वांशहरत्वयोरैकाधिकरण्यमुक्तम् । एवं सोदरेऽपि द्रष्ट-  
व्यम् । एवञ्च यदुक्तं मनुना—

भ्रतृणामेकजातानां एकश्चेत्पुत्रवान् भवेत् ।

सर्वे ते तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत् ॥ इति ॥

तत्र पुत्रग्रहणं ग्रामस्य तात इतिवत् प्रशंसार्थमित्यवगन्तव्यम् ।  
अन्यथा 'पत्नीदुहितरः' इत्याद्यसमञ्जसं स्यात् । अनेनैवाभिप्रा-  
येणगौतमोऽपि 'पुत्राभावेऽस्य बान्धवाः सपिण्डाः मातृसपि-



ण्डाः शिष्याश्च दद्युः । तदभावे ऋत्विगाचार्यौ' इति । मातृ-  
सपिण्डा मातुलादयः । सपिण्डाभावे समानोदकाः पिण्डं  
दद्युः । तथाच मार्कण्डेयपुराणे—

पुत्राभावे सपिण्डास्तु तदभावे तु सोदकाः ।  
मातृसपिण्डा ये वा स्युर्ये वा मातृश्च सोदकाः ॥  
कुर्युरेनं विधिं सम्यगपुत्रस्य सुतास्मृताः ।  
कुर्यान्मातामहायैवं पुत्रिकातनयस्तथा ॥  
सर्वाभावे स्त्रियः कुर्युस्त्वभर्तृणाममन्त्रकम् ।  
तदभावे च नृपातिः कारयेत्स्वकुटुम्बिनाम् ॥  
तज्जातीयैः नरैस्सम्यग्दाहाद्यास्सकलाः क्रियाः ।  
सर्वेषामेव वर्णानां बान्धवो नृपातिर्यतः ॥

श्री विष्णुपुराणे पराशरोपि—

पुत्रः पौत्रः प्रपौत्रो वा तद्वद्वा भ्रातृसन्ततिः ।  
सपिण्डसन्ततिर्वाऽपि क्रियार्हा नृप जायते ॥  
तेषामभावे सर्वेषां समानोदकसन्ततिः ।  
मातृपक्षस्य पिण्डेन सम्बद्धा ये जलेन वा ॥  
कुलद्वयेऽपि चोत्सन्नैस्स्त्रीभिः कार्याः क्रिया नृप ।  
तत्सङ्घातगतैर्वाऽपि कार्याः प्रेतस्य वै क्रियाः ॥  
उत्सन्नबन्धुरिक्थानां कारयेदवनीपतिः । इति ।

उक्तेषु पुत्रादिषु कस्य कस्मिन्कर्मण्यधिकार इत्याशङ्क्य स  
एवाह—

श्राद्धकाण्डे श्राद्धाधिकारिनिर्णयः

पूर्वाः क्रिया मध्यमाश्च तथा चैवोत्तराः क्रियाः ।  
त्रिप्रकाराः क्रिया ह्येतास्तासां भेदान् गृणुष्व मे ।  
आद्याहाद्वादशाहाच्च मध्ये यास्युः क्रिया मताः ।  
ताः पूर्वा मध्यमा मासि मास्येकोद्दिष्टसंज्ञिकाः ॥  
प्रेते पितृत्वमापन्ने सपिण्डीकरणादनु ।  
क्रियन्ते याः क्रियाः पितृयाः प्रोच्यन्ते ता नृपोः ।  
पितृमातृसपिण्डैस्तु समानमलिलैस्तथा ।  
तत्सङ्घातगतैश्चैव राज्ञा वा धनहारिणा ॥  
पूर्वाः क्रियाश्च कर्तव्याः पुत्राद्यैश्चोत्तराः क्रियाः ।  
दौहित्रैर्वा नृपश्रेष्ठ कार्यास्तत्तनयैस्तथा ॥ इति ॥

सपिण्डाद्यैरवनिपत्यन्तैः पूर्वाः क्रियाः मध्यमाश्च क  
पुत्राद्यैरेव भ्रातृसन्तसन्तैर्दौहित्राद्यैश्चोत्तराः क्रियाः क  
सपिण्डाद्यैरवनिपत्यन्तैरित्यर्थः । दौहित्रेषु तु भविष्य  
क्तो विशेषः—

यथा व्रतस्थोऽपि सुतः पितुः कुर्यात्क्रियां नृप ।  
उदकाद्या महाबाहो दौहित्रोऽपि तथाऽर्हति ॥ इ

ननु च पुत्राभावे तु पत्नी स्यादित्येतत्—‘सर्वाभा  
कुर्युः स्त्रभर्तृणाममन्त्रकम्’ इति पुराणवचनेन विरुध्यते ।  
पुत्राभावे तु पत्नी स्यादित्येतद्वात्मादिविवाहोढादिविषयं  
यज्ञान्वितत्वेन तत्रैव पत्नीशब्दप्रयोगात् । इतरत्र तु—



क्रयक्रीता तु या नारी न सा पत्नी विधीयते ।

न सा दैवे न सा पित्रचे दासीं तां कवयो विदुः ॥

इति पत्नीत्वाभावात् स्वभर्तृणाममन्त्रकमिति पुराणवचनं तद्विषयम् । यद्वा—पुत्राभावे तु पत्नी स्यादित्येतद्ब्रह्मवादिनीविषयम्, तस्या अध्ययनसद्भावेन मन्त्रयोगित्वात् । पुराणवचनं त्वध्ययनविहीनसद्योवध्वभिप्रायमित्यनुसन्धेयम् । यदत्र युक्तं तद्ब्राह्मम् । पत्न्यां तु विशेषमाह वृद्धमनुः—

अपुत्रा शयनं भर्तुः पालयन्ती व्रते स्थिता ।

पत्नी दद्यात्तु तत्पिण्डं कृत्स्नमंशं लभेत च ॥

इति । शयनं पालयन्ती सुसंयतेत्यर्थः । विष्णुरपि—

श्वश्रादीनां तथा पिण्डं पत्नी दद्यात्सुसंयता ।

इति । यत्तु कात्यायनेनोक्तं—

पुत्रश्शिष्योऽथवा पत्नी पिता भ्राताऽथवा गुरुः ।

स्त्रीहारी धनहारी च कुर्युः पिण्डोदकक्रियाम् ॥ इति,

यदापि वृद्धशतातपेन—

मातुलो भागिनेयस्य स्वस्त्रीयो मातुलस्य च ।

श्वशुरस्य गुरोश्चैव सख्युर्मातामहस्य च ॥

एतेषां चैव भार्याणां स्वसुर्मातुः पितुस्तथा ।

श्राद्धमामं तु कर्तव्यमिति वेदविदां स्थितिः ॥ इति,

अत्रापि श्रीविष्णुपुराणवचनानुसारेण व्यवस्था वेदितव्या ।

यत्तु कात्यायनेनोक्तं—

अपुत्रायां पतिर्दद्यात्सपुत्रायां तु न क्वचित् ।

न पुत्रस्य पिता कुर्यात् नानुजस्य तथाऽग्रजः ॥

इति, तत् स्नेहविहीनपित्रादिविषयम् । अत एव बोधायनः—

पित्रा श्राद्धं न कर्तव्यं पुत्राणां तु कथञ्चन ।

भ्रात्रा नैव च कर्तव्यं भ्रातृणां च कनीयसाम् ॥

अपि स्नेहेन कुर्यातां सपिण्डीकरणं विना ।

गयायां तु विशेषेण ज्यायानपि समाचरेत् ॥ इति ॥

अत्र धनहारित्वादिनिमित्ताभावेऽपि कृतेऽभ्युदय इत्याह वृद्ध-  
शातातपः—

पितुश्श्राद्धं तु कर्तव्यं सर्वेषां वर्णलिङ्गिनाम् ।

एवं कुर्यान्नरस्सम्यङ्मूर्हतीं श्रियमामुयात् ॥

इति । लिङ्गिन आश्रमिणः । एतच्च सवर्णाभिप्रायेण, अ-  
न्यथा दोषश्रवणात् । तथाच मरीचिः—

ब्राह्मणो ह्यसवर्णस्य यः करोत्यौर्ध्वदैहिकम् ।

तद्वर्णत्वमसौ याति इह लोके परत्र च ॥

पारस्करोऽपि—

न ब्राह्मणेन कर्तव्यं गूढस्य त्वौर्ध्वदैहिकम् ।

गूढेण वा ब्राह्मणस्य विना पारशवात्क्वचित् ॥

इति स्मृतिचन्द्रिकायां श्राद्धाधिकारिनिर्णयः



अथ मातामहश्राद्धाधिकारिनिर्णयः.

तत्र पुलस्त्यः—

मातुः पितरमारभ्य त्रयो मातामहाः स्मृताः ।

तेषां तु पितृवच्छ्राद्धं कुर्युर्दुहितृसूनवः ॥

पितृवच्छ्राद्धं पार्वणमित्यर्थः । तच्च श्राद्धमावश्यकम् । अत एव व्यासः—

पितृन् मातामहांश्चैव द्विजश्राद्धेन तर्पयेत् ।

अनृणश्च पितृणां तु ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥

पुराणेऽपि—

कृत्वा तु पैतृकं श्राद्धं पितृप्रभृतिषु त्रिषु ।

कुर्यान्मातामहानां च तथैवानृण्यकारणात् ॥

इति । आनृण्यग्रहणं नित्यत्वज्ञापनार्थम् । अत एवाकरणे दोषः पुराणे दर्शितः—

पार्वणं कुरुते यस्तु केवलं पितृहेतुकम् ।

मातामहां न कुरुते पितृहा स प्रजायते ॥

पितरो यत्र पूज्यन्ते तत्र मातामहा ध्रुवम् ।

अविशेषेण कर्तव्यं विशेषान्नरकं व्रजेत् ॥

इति । यत्र यस्मिन् कर्मणि पितरः पूज्यन्ते तत्राविशेषेण मातामहा अपि पूज्या इत्यर्थः । अनेन सर्वस्मिन्नपि पितृ श्राद्धे मातामहश्राद्धमपि कार्यमित्युक्तं भवति । अत्र केषु चिदपवादमाह कात्यायनः—

कर्षूसमन्वितं मुक्त्वा तदाद्यं श्राद्धषोडशम् ।

प्रत्याब्दिकं च शेषेषु पिण्डास्स्युष्पाडिति स्थितिः ॥

इति । कर्षूसमन्वितं सपिण्डीकरणश्राद्धम् । षोडशग्रहणमे-  
कोद्दिष्टोपलक्षणार्थम् । एवञ्च यन्मातामहश्राद्धं पितृश्राद्धेषु  
विहितं तत्रैव दोषानुपययोरभिधानात्तदेव सर्वदौहित्रसाधार-  
णम् । यः पुनर्धनहारी दौहित्रः स नवश्राद्धाद्यापि कुर्यादेव ।  
'यो यत आददीत स तस्मै श्राद्धं कुर्यात्' इति स्मरणात् ।  
अनेनैवाभिप्रायेण स्कन्दोपि—

श्राद्धं मातामहानां तु अवश्यं धनहारिणा ।

दौहित्रेणार्थनिष्कृत्यै कर्तव्यं विधिवत्सदा ॥

इति । यो धनहारी दौहित्रः तेनावश्यं नवश्राद्धाद्यौर्ध्वदै-  
हिकं कार्यमित्यर्थः । तत्रोपपत्तिमाह स एव—

मलमेतन्मनुष्याणां द्रविणं यत्प्रकीर्तितम् ।

तद्गृह्णन् मलमादत्ते दुर्भेदं ज्ञानिनामपि ॥

ऋषिभिस्तस्य निर्दिष्टा निष्कृतिः पावनी परा ।

आ देहपतनात्कुर्यात्तस्य पिण्डोदकक्रियाम् ॥

इति । ननु च—

कुर्यान्मातामहश्राद्धं नियमात्पुत्रिकासुतः ।

उभयोरपि सम्बद्धः कुर्यात्स उभयोरपि ॥

इति यमेन पुत्रिकापुत्र एव नियमग्रहणादन्यत्र नियमो न  
गृह्यते, मैवं-वचनार्थापरिज्ञानात् । अस्यार्थः—द्विविधो हि



पुत्रिकापुत्रः, एको मातामहेन सम्बद्धः अपरः पितृमाता-  
महाभ्यामिति । तत्र प्रथमो मातामहश्राद्धं नियमेन कुर्यात् पितृ-  
श्राद्धमिच्छया, य उभयसम्बद्धः स उभयोरपीति । अतो ना-  
नेन नियमोऽवगम्यते । यदपि मनुनोक्तं—

दौहित्रो ह्यखिलं रिक्थमपुत्रस्य पितुर्हरेत् ।

स एव दद्यात् द्वौ पिण्डौ पित्रे मातामहाय च ॥

इति, तदापि यो धनहारी दौहित्रस्स एव पितृमातामहयोर्नव-  
श्राद्धाद्यौर्ध्वदैहिकं कुर्यात्, नेतर इत्येवंपरं न पुनरित-  
रस्य श्राद्धमात्रनिषेधार्थं, पूर्वोक्तानृण्यादिप्रतिपादकवचनविरो-  
धात् । एवञ्च यत्कैश्चिदुक्तं धनहारिपुत्रिकापुत्रयोर्मातामहश्रा-  
द्धमावश्यकं नान्यस्येति, तत् पूर्वोक्तवचनादर्शननिबन्धनमि-  
त्युपेक्षणीयम् । पुत्रिकापुत्रश्राद्धे विशेषमाह मनुः—

मातुः प्रथमतः पिण्डं निर्वपेत्पुत्रिकामृतः ।

द्वितीयं तु पितुस्तव्यास्तृतीयं तु पितुः पितुः ॥

इति । द्व्यामुष्यायणे तु पुत्रिकापुत्रे उशनसोक्तो विशेषः—

मातामहं तु मात्रादि पैतृकं पितृपूर्वकम् ।

मातृतः पितृतो यस्मादधिकारोस्ति धर्मतः ॥

इति । क्षेत्रजे तु द्व्यामुष्यायणे देवलोक्तं—

द्व्यामुष्यायणका दद्युः द्वाभ्यां पिण्डोदके पृथक् ।

इति । द्वाभ्यां पितृमातृवर्गाभ्यामित्यर्थः । अत्र क्रमविशेषमाह  
मरीचिः—

सगोत्रो वाऽन्यगोत्रो वा यो भवेद्विधिना सुतः ।  
 पिण्डं श्राद्धविधानं च क्षेत्रिणे प्राग्विनिर्वपेत् ॥  
 बीजिने तु ततः पश्चात् क्षेत्री जीवति चेत्क्वचित् ।  
 बीजिने दद्यादादौ तु मृते पश्चात्पदीयते ॥

इति । क्षेत्रिण इति शेषः ।

इति स्मृतिचन्द्रिकायां मातामहश्राद्धाधिकारिनिर्णयः.

अथ जीवपितृकश्राद्धनिर्णयः.

तत्र कात्यायनः—

सपितुः पितृकृत्येषु अधिकारो न विद्यते ।

न जीवन्तमतिक्रम्य किञ्चिदद्यादिति श्रुतिः ॥

इति । पितृकृत्येषु श्राद्धेषु पितामहादिसम्बन्धेष्विषयः । अत्र  
 केषुचिदपवादो मैत्रायणीयपरिशिष्टे दर्शितः—

उद्धाहे पुत्रजनने पित्रचेष्ट्यां सौमिके मखे ।

तीर्थे ब्राह्मण आयाते पडेते जीवतः पितुः ॥

इति । जीवतः पितुः पुत्रस्य पडेते श्राद्धकाला इत्यर्थः ।

पित्रचेष्ट्यां चातुर्मास्येषु, सौमिके मखे सोमयागादौ पुरोडा-  
 शात्पिण्डदाने च । एतत्सायिकाभिप्रायम् । अत एव सुमन्तुः—

न जीवपितृकः कुर्याच्छ्राद्धमाग्निमृते द्विज ।

येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यः कुर्वीत सायिकः ॥



पितामहोऽप्येवमेव कुर्याज्जीवति साग्निकः ।

साग्निकोऽपि न कुर्वीत जीवति प्रपितामहे ॥ इति ॥

प्रपितामहग्रहणं पितृपितामहोपेतप्रपितामहप्रदर्शनार्थम् । अत एव विष्णुः—‘पितरि पितामहे प्रपितामहे च जीवति नैव दद्यात्’ इति । पितरि पितामहे च जीवति कथं कार्यमित्यपेक्षिते स एवाह—‘पितरि जीवति यः श्राद्धं कुर्यात्स येषां पिता कुर्यात्तेषां कुर्यात् पितरि पितामहे च येषां पितामहः’ इति । तथा पित्रादिषु त्रिषु द्वयोरेकस्य वा मरणेऽपि तेनैवोक्तं—‘यस्य पिता प्रेतस्स्यात्स पित्रे पिण्डं निधाय पितामहात्परं दद्यात् । यस्य पितामहः प्रेतस्स्यात्तस्मै पिण्डं निधाय प्रपितामहात्परं दद्यात् । यस्य पितामहप्रपितामहौ च प्रेतौ स्यातां यस्य पिता प्रपितामहश्च प्रेतौ स्यातां स पित्रे पिण्डं निधाय पितामहात्परं दद्यात्’ इति । भविष्यत्पुराणे पितरि जीवति द्वयोरेव श्राद्धमुक्तं—

जीवमाने न देयं स्याद्यस्माद्भरतसत्तम ।

तस्माज्जीवपिता कुर्याद्वाभ्यामेव न संशयः ॥

इति । मनुस्तु त्रिषु यो जीवति तमेव श्राद्धे भोजयेदित्याह—

ध्रियमाणे तु पितरि पूर्वेषामेव निर्वपेत् ।

विप्रवद्भावितं श्राद्धे स्वकं पितरमाशयेत् ॥

पिता यस्य तु वृत्तस्स्याज्जीविद्वाऽपि पितामहः ।

पितुस्तु नाम संकीर्त्य कीर्तयेत्प्रपितामहम् ॥

पितामहो वा तच्छ्राद्धं भुञ्जीतेत्यब्रवीन्मनुः ॥

इति । पूर्वेषां पितामहादीनाम् । निगमोऽपि—‘यो जीवति पितृणां तं भोजयेत्पितृस्थान इत्येके, जीवतामजीवतां वा देयमेवेति हिरण्यकेतुः’ इति । एवं पिण्डपितृयज्ञेऽपि द्रष्टव्यम् । अत एव याज्ञवल्क्यः—

होमतः पितृयज्ञस्य जीवेत्पितरि जीवतः ।

पितरं भोजयित्वा वा पिण्डौ निर्वृणुयात्पिता ॥

उभौ यस्य व्यतीतौ तु जीवेच्चेत्प्रपितामहः ।

पिण्डौ निर्वृणुयात्पूर्वौ भोजयेत्प्रपितामहम् ॥

इति । यमस्तु होमोऽपि पाक्षिक इत्याह—

पित्र्यं जीवपितुर्नोक्तमग्नौ होमोऽपि पाक्षिकः ।

येभ्यो वाऽपि पिता तेभ्यो दद्याद्वैतानकर्मणि ॥

दद्यात्तेभ्यः परेभ्यस्तु जीवेच्चेत्त्रितयं यदि ।

इति । पित्र्यं पिण्डदानं, वैतानकर्मणि पिण्डापेतृयज्ञ इत्यर्थः ।

आपस्तम्बस्तु पितरि जीवति न पिण्डदानं नित्यमित्याह—

‘यदि जीवति पिता न दद्यादा होमान्यक्त्वा विरमेत्’

इति । अत्र यथास्वशाखं व्यवस्था । भविष्यत्पुराणेऽपि

श्राद्धे प्रत्यक्षार्चनं निषिद्धमित्युक्तं—

प्रत्यक्षमर्चनं श्राद्धे न युक्तं मनुरब्रवीत् ।



पिण्डनिर्वापणं चापि महापातकसम्मितम् ॥  
 इति । मनुरत्र ज्ञानवान्, मनुना तु प्रत्यक्षार्चनस्योक्तत्वात् ।  
 इति स्मृतिचन्द्रिकायां जीवपितृश्राद्धाधिकारनिर्णयः.

अथ श्राद्धकालाः.

तत्र याज्ञवल्क्यः—

अमावास्याऽष्टका वृद्धिः कृष्णपक्षोऽयनद्वयम् ।

द्रव्यं ब्राह्मणसम्पत्तिः विषुवत्सूर्यसङ्क्रमः ॥

व्यतीपातो गजच्छाया ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः ।

श्राद्धं प्रति रुचिश्चैव श्राद्धकालाः प्रकीर्तिताः ॥

इति । यस्यां तिथौ सूर्याचन्द्रमसोः सन्निकर्षः साऽमावा-  
 स्या । तस्यां तिथौ श्राद्धमावश्यकम् । तथाच लौगाक्षिः—

श्राद्धं कुर्यादवश्यं तु प्रमीतपितृकस्स्वयम् ।

इन्दुक्षये मासि मासि वृद्धौ प्रत्यन्दमेव च ॥

इति । इन्दुक्षयोऽमावास्या । अष्टका मार्गशीर्षादिमासचतुष्ट-  
 यापञ्चम्याष्टम्यः, 'हेमन्तशिशिरयोश्चतुर्णामपरपक्षाणामष्टमीष्वष्ट-  
 काः' इति शौनकस्मरणात् । अत्रापि श्राद्धमावश्यकं—

अमावास्याव्यतीपातपौर्णमास्यष्टकासु च ।

विद्वान् श्राद्धमकुर्वाणः प्रायश्चित्तीयते तु सः ॥

इति पितामहस्मरणात् । वृद्धिः पुत्रादिः । अत्रापि श्राद्धमाव-  
 श्यकम्—

वृद्धौ न तर्पिता यैर्वै देवता गृहमेधिभिः ।

तद्दानमासुरं सर्वमासुरो विधिरेव सः ॥

इति वृद्धशातातपस्मरणात् । कृष्णपक्षोपरपक्षः । अत्रापि श्राद्धं नित्यम्, 'शाक्रेनाप्यपरपक्षं नातिक्रामेत्' इति कात्यायनस्मरणात् । अत्र विशेषमाह वसिष्ठः—'अपरपक्ष ऊर्ध्वं चतुर्थ्याः पितृभ्यो दद्यात्' इति । ऊर्ध्वं चतुर्थ्याः पञ्चमीमारभ्येत्यर्थः । गौतमोऽपि—'अथ श्राद्धममावास्यायां पितृभ्यो दद्यात्पञ्चमीप्रभृति वाऽपरपक्षस्य यथाश्राद्धं सर्वस्मिन्वा' इति । अपरपक्षस्य पञ्चमीमारभ्य पितृभ्यो दद्यात् सर्वस्मिन्वाऽपरपक्षे प्रतिपदमारभ्येत्यर्थः । कात्यायनोऽपि—'अपरपक्षे श्राद्धं कुर्वीतोर्ध्वं चतुर्थ्या यदहस्सम्पद्येत' इति । चतुर्थ्या ऊर्ध्वं यस्मिन्नहनि द्रव्यादि सम्पद्येत तस्मिन्वा कुर्यादित्यर्थः । अनेनैकस्मिन्नहनि श्राद्धं कुर्यादित्युक्तं भवति । उक्तं च गौतमेन—'सर्वस्मिन्वा द्रव्यदेशब्राह्मणसंनिधाने वा' इति । अत्र यथासामर्थ्यं व्यवस्था । अत एव गौतमः—'कालनियमशक्तितः' इति । अत्र सामर्थ्यतः कालनियमो भवतीत्यर्थः । यदैकस्मिन् अहनि तदा पृथगेव अमावास्याश्राद्धं कार्यम् । 'अमावास्याऽष्टका वृद्धिः कृष्णपक्षः' इति पृथगुपादानात् 'अपरपक्षे यदहस्सम्पद्येत अमावास्यायां विशेषेण' इति नियमस्मरणात्, तथा—

न निर्वपति यश्श्राद्धं प्रमीतपितृको द्विजः ।



इन्दुक्षये मासि मासि प्रायश्चित्तीयते तु सः ॥  
 इति व्याघ्रेणाकरणे प्रायश्चित्तविधानाच्च । तथा 'यथा  
 कथञ्चिन्नित्यानि कुर्यादिन्दुक्षयादिषु' इति हारीतेन नित्य-  
 त्वाभिधानात् । अतो यत्कैश्चिदुक्तं—'अमावास्याश्राद्धमापर-  
 पक्षिकश्राद्धेन विकल्प्यते' इति, तदपास्तम् । अपरपक्षे  
 पुनरापस्तम्बोक्तो विशेषः । 'मासिमासि कार्यमपरपक्षस्यापरा-  
 ङ्गः श्रेयांस्तथाऽपरपक्षस्य जघन्यान्यहानि' इति । जघन्या-  
 नि दशम्यादीनि । अत एव मनुः—

कृष्णपक्षे दशम्यादौ वर्जयित्वा चतुर्दशीम् ।

श्राद्धे प्रशस्तास्तिथयो यथैता न तथेतराः ॥

इति । दशम्यादितिथिषु चतुर्दशीं वर्जयित्वेत्यर्थः । चतुर्दशी  
 तु शस्त्रहतानामेव । यथाऽऽह याज्ञवल्क्यः—

प्रत्तिपत्प्रभृति ख्याता वर्जयित्वा चतुर्दशीम् ।

शस्त्रेण तु हता ये वै तेभ्यस्तत्र प्रदीयते ॥

इति । शस्त्रग्रहणं विषादेरापि प्रदर्शनार्थम् । अत एव म-  
 रीचिः—

विषशस्त्रापदाहितिर्यग्ब्राह्मणघातिनाम् ।

चतुर्दश्यां क्रिया कार्या अन्येषां तु विगर्हिताः ॥

प्रचेता अपि—

वृक्षारोहणलोहाद्यैः विद्युज्जलविषादिभिः ।

नखिदंष्ट्रिविपन्नानां तेषां शस्ता चतुर्दशी ॥

इति । अत्र विशेषमाह गर्गः—

चतुर्दश्यां तु यच्छ्राद्धं सपिण्डीकरणात्परम् ।

एकोद्दिष्टविधानेन तत्कार्यं शस्त्रघातिने ॥

इति । शस्त्रघातिने यदाऽऽपरपक्षिकश्राद्धं चतुर्दश्यां क्रियते तदैकोद्दिष्टविधानेन नान्यथेत्यर्थः । अत एव सुमन्तुः—

एकपिण्डीकृतानां तु पृथक्त्वं नोपपद्यते ।

सपिण्डीकरणाद्धूर्ध्वं ऋते कृष्णचतुर्दशीम् ॥

इति । यत्तु मार्कण्डेयपुराणे—

प्रतिपद्जनलाभाय द्वितीया द्विपदप्रदा ।

परार्थिनां तृतीया तु चतुर्थी शत्रुनाशिनी ॥

पञ्चम्यां श्रियमाप्नोति षष्ठ्यां पूज्यो भवेन्नरः ।

गाणाधिपस्य सप्तम्यामष्टम्यामृद्धिमुत्तमाम् ॥

श्रियो नवम्यामाप्नोति दशम्यां पूर्णकामताम् ।

वेदांस्तथाऽऽमुयात्सर्वानेकादश्यां क्रियापरः ॥

द्वादश्यां जयलाभं च प्राप्नोति पितृपूजकः ।

प्रजामिष्टां पशून् मेध्यान् स्वातन्त्र्यं बुद्धिमुत्तमाम् ॥

दीर्घमायुस्तथैश्वर्यं कुर्वाणस्तु त्रयोदशीम् ।

अवाप्नोति न सन्देहः श्राद्धं श्राद्धपरो नरः ॥

युवानः पितरो यस्य मृताश्शस्त्रेण वा हताः ।

तेन कार्यं चतुर्दश्यां तेषां सिद्धिमभीप्सता ॥



श्राद्धं कुर्वन्नमावास्यां यत्नेन पुरुषशुचिः ।

सर्वान्कामानवाप्नोति स्वर्गं चानन्तमश्नुते ॥

इति, तत् नित्यत्वनिराकरणार्थं न, किंतु कालविशेषात्फल-  
विशेषो भवतीत्येवंपरम्, अत एवापस्तम्बः—‘सर्वेष्वेवा-  
परषंक्षत्याहस्सु क्रियमाणे पितृन् प्रीणाति कर्तुस्तु कालनि-  
यमात्फलविशेषः’ इति । प्रकृतमुच्यते—अयनद्वयं मकरक-  
र्कटकसंक्रान्ती । अत्रापि श्राद्धं नित्यम् । अत एव विष्णु-  
पुराणे पराशरः—

उपप्लुवे चन्द्रमसो रवेश्च त्रिष्वष्टकास्वप्ययनद्वये च ।

पानीयमप्यत्र तिलैर्विमिश्रं दद्यात्पितृभ्यः प्रयतो मनुष्यः ॥

श्राद्धं कृतं तेन समास्सहस्रं रहस्यमेतत्पितरो वदन्ति ॥

अत्र पानीयमप्यत्रेति वचनादयनश्राद्धं नित्यमिति गम्यते ।  
जातुकर्ण्योपि—

ग्रहोपरागे विषुवे च जाते पित्र्ये मघायामयनद्वये च ।

नित्यं च शङ्खे च तथैव पद्मे दत्तं भवेन्निष्कसहस्रतुल्यम् ॥

इति । अत्र नित्यं दत्तं निष्कसहस्रतुल्यमित्यन्वयः । पित्र्ये  
नभस्यापरपक्षे या मघा तस्यामित्यर्थः । शङ्खादिस्वरूपमपि तेनै-  
वोक्तं—

शङ्खं प्राहुरमावास्यां क्षीणसोमां द्विजोत्तमाः ।

अष्टकासु भवेत्पद्मं तत्र दत्तं यथाऽक्षयम् ॥

इति । अथवा पञ्चं शङ्कोक्तं—

यथा विष्टिर्व्यतीपातो भानुवारस्तथैव च ।

पद्मकं नाम तत्प्रोक्तमयनाच्च चतुर्गुणम् ॥

इति । यत्तु विष्णुनोक्तं—‘आदिससङ्क्रमो विषुवद्रयं व्यती-  
पातो जन्मर्क्षमभ्युदयश्च,

एतांश्च श्राद्धकालान्वै काम्यानाह प्रजापतिः ।

श्राद्धमेतेषु यद्वत्तं तदानन्त्याय कल्पते ॥

इति, तदपि न नित्यत्वनिराकरणार्थम् । वचनद्वयेनाग्निहोत्रा-  
दिवन्नित्यत्वकाम्यत्वयोरविरोधात् । द्रव्यं ब्राह्मणसम्पत्तिरिति,  
द्रव्यस्य श्राद्धार्हस्य ब्राह्मणस्य वा वक्ष्यमाणस्य सम्पत्ति-  
र्लाभो यस्मिन् काले सः श्राद्धकाल इत्यर्थः । अत्रापि श्रा-  
द्धमावश्यकम् । यथाऽऽह हारीतः—

तीर्थे द्रव्योपपत्तौ तु न कालमवधारयेत् ।

पात्रं च ब्राह्मणं प्राप्य सम्यक्श्राद्धं विधीयते ॥

इति । तीर्थं गङ्गादि । विषुवत् मेषे तुलायां च सूर्यसङ्क्रमः ।  
अत्र पुलस्त्योक्तो विशेषः—

अयनद्वितये श्राद्धं विषुवद्वितये तथा ।

युगादिषु च सर्वासु पिण्डनिर्वापणादृते ॥

इति । सूर्यसङ्क्रमः सूर्यस्य राशितो राश्यन्तरगमनम् । सूर्य-  
सङ्क्रम इत्यनेनैव सङ्क्रान्तिमात्रसिद्धौ अयने विषुवे चेति



पृथग्वचनं फलभूयस्त्वार्थम् । अत एव शङ्कः—

हस्तिच्छायासु यद्वत्तं यद्वत्तं राहुदर्शने ।

विषुवत्ययने चैव सर्वमानन्यमश्नुते ॥

इति । व्यतीपातो योगविशेषः वृद्धमनुनोक्तः—

श्रवणाश्विधनिष्ठाद्रानागदैवतमस्तकैः ।

यद्यमा रविवारेण व्यतीपातस्स उच्यते ॥

इति । यद्यमावास्या रविवारेण श्रवणादिना च युक्ता स व्यतीपात इत्यर्थः । नागदैवतमाश्लेषानक्षत्रम् । मस्तकं मृग-  
शिराः । तत्रापि श्राद्धं नित्यम् ।

अमावास्याव्यतीपातपौर्णमास्यष्टकासु च ।

विद्वान् श्राद्धमकुर्वाणः प्रायाश्चित्तीयते तु सः ॥

इति पितामहस्मरणात् । गजच्छाया हस्तिच्छाया, तस्यां श्राद्धं  
दद्यात् । तथा काठकश्रुतिः—‘एतद्धि देवपितृणामयनं यद्ध-  
स्तिच्छायायां श्राद्धं दद्यात्’ इति । महाभारतेऽपि—

आजेन सर्वलोहेन वर्षासु नियतव्रतः ।

हस्तिच्छायासु विधिवत्कर्णव्यजनवीजितम् ॥

इति । श्राद्धं दद्यादिति शेषः । कर्णव्यजनवीजितमित्यनेनैत-  
द्धस्तिच्छायाविषयमित्यवगम्यते । मनुरपि—

अपि नस्स कुले भूयाद्यो नो दद्यात्त्रयोदशीम् ।

पायसं मधुसार्पिभ्यां प्राक्छाये कुञ्जरस्य च ॥

इति । प्राची छाया यस्य देशस्य स प्राक्छायः, तस्मिन्नित्यर्थः । अथवा पारिभाषिकी गजच्छाया । सा च स्मृत्यन्तरे दर्शिता—

यदेन्दुः पितृदैवत्ये हंसश्चैव करे स्थितः ।

तिथिर्वैश्रवणी या च गजच्छायेति सा स्मृता ॥

इति । पितृदैवत्ये मखायाम् । हंसः सूर्यः । करो हस्तनक्षत्रम् । वैश्रवणी त्रयोदशी । पुराणेऽपि—

हंसे हस्तास्थिते या तु मखायुक्ता त्रयोदशी ।

तिथिर्वैश्रवणी नाम सा छाया कुञ्जरस्य तु ॥

हंसे करस्थिते या तु अमावास्या करान्विता ।

सा छाया कुञ्जरच्छाया इति बोधायनोऽब्रवीत् ॥

वनस्पतिगते सोमे या छाया प्राङ्मुखी भवेत् ।

गजच्छाया तु सा प्रोक्ता तस्यां श्राद्धं प्रकल्पयेत् ॥

इति । अमावास्यायां अपराह्ण इत्यर्थः—

सैहिकेयो यदा सूर्यं ग्रसते पर्वसन्धिषु ।

गजच्छाया तु सा प्रोक्ता तस्यां श्राद्धं प्रकल्पयेत् ॥

सैहिकेयो राहुः । अत्र फलविशेषो वायुपुराणे दर्शितः—

घृतेन भोजयेद्विप्रान् घृतं भूमौ समुत्सृजेत् ॥

छायायां हस्तिनश्चैव दत्त्वा श्राद्धं न शोचति ॥

श्रीविष्णुधर्मोत्तरेऽपि—

गथायां दर्शने राहोः खड्गमांसेन योगिनम् ।



भोजयेच्च कुलेऽस्माकं छायायां कुञ्जरस्य च ॥  
 आकल्पिकी तु सा तृप्तिस्तेनास्माकं भविष्यति ।  
 दाता सर्वेषु लोकेषु कामचारी भविष्यति ॥  
 यदैतत्पञ्चकं न स्यादेकेनापि वयं सदा ।  
 तृप्तिं प्राप्स्याम चानन्तां किंपुनस्सर्वसम्पदा ॥

इति । तथा भोक्तुरपि दोषः स्मृत्यन्तरे दर्शितः—  
 कृष्णाजिनप्रतिग्राही विक्रयी वा भवेत्तु यः ।  
 गजच्छायाश्रितो भुक्त्वा न भूयः पुरुषो भवेत् ॥  
 ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोरिति—ग्रहणमुपरागः । अत्रापि श्राद्धं नि-  
 त्यम् । अत एव शातातपः—

सर्वस्वेनापि कर्तव्यं श्राद्धं वै राहुदर्शने ।  
 अकुर्वाणस्तु तच्छ्राद्धं पङ्के गौरिव सीदति ॥

तथाऽत्र फलविशेषो विष्णुना दर्शितः—  
 राहुदर्शनदत्तं हि श्राद्धमाचन्द्रतारकम् ।  
 गुणवत्सर्वकामीयं पितृणामुपतिष्ठति ॥

इति । ऋष्यशृङ्गोऽपि—

राहुग्रस्ते तु वै सूर्ये यस्तु श्राद्धं प्रकल्पयेत् ।  
 तेन वै सकला पृथ्वी दत्ता विप्रस्य वै करे ॥

इति । अत्र कालनियममाह वृद्धवासिष्ठः—

त्रिदशास्पर्शसमये तृप्यन्ति पितरस्तथा ।

मनुष्या मध्यकाले तु मोक्षकाले तु राक्षसाः ॥

इति । यत्तु मार्कण्डेयपुराणे—

विशिष्टब्राह्मणप्राप्तौ सूर्येन्दुग्रहणेऽयने ।

विषुवे रविसङ्क्रान्तौ व्यतीपाते च पुत्रके ॥

श्राद्धार्हद्रव्यसंप्राप्तौ तथा दुस्स्वप्नदर्शने ।

जन्मक्षग्रहपीडासु श्राद्धं कुर्वीत चेच्छया ॥

इति, इच्छा कामः, तदापि श्राद्धं कुर्वीतेत्येवं परम्, न पुनः  
काम्यमेवेति वक्तुम् । अत एव कूर्मपुराणे—

नैमित्तिकं तु कर्तव्यं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।

बान्धवानां च मरणे नरकी स्यात्ततोऽन्यथा ॥

काम्यानि चैव श्राद्धानि शस्यन्ते ग्रहणादिषु ।

इति । श्राद्धं प्रति रुचिरिति—रुचिरिच्छा श्राद्धं प्रति यदा  
तदैव तत्कार्यमित्यर्थः । चकारोऽन्येषामपि श्राद्धकालानां  
प्रदर्शनार्थः । अत एव यमः—

आषाढ्यामपि कार्तिक्यां माघ्यां त्रीनपञ्च वा द्विजान् ।

तर्पयेत्पितृपूर्वं तु तस्याप्यक्षय्यमुच्यते ॥

देवलोपि—

तृतीया रोहिणीयुक्ता वैशाखस्य सिता तु या ।

मघाभिस्सहिता कृष्णा नभस्ये तु त्रयोदशी ॥

तथा शतभिषग्युक्ता कार्तिके नवमी तथा ।

इन्दुक्षयगजच्छायावैधृतीषु युगादिषु ॥

एते कालास्समुद्दिष्टाः पितॄणां प्रीतिवर्धनाः ।



इति । युगादयस्तु मत्स्यपुराणे दर्शिताः—

वैशाखस्य तृतीया तु नवमी कार्तिकस्य तु ।

माघे पञ्चदशी चैव नभस्ये च त्रयोदशी ॥

युगादयस्स्मृता ह्येता दत्तस्याक्षयकारकाः ॥

इति । विष्णुपुराणेऽपि—

वैशाखमासस्य सिता तृतीया नवम्यसौ कार्तिकशुक्लपक्षे ।

नभस्यमासस्य च कृष्णपक्षे त्रयोदशी पञ्चदशी च माघे ॥

पानीयमप्यत्र तिलैर्विमिश्रं दद्यात्पितृभ्यः प्रयतो मनुष्यः ।

श्राद्धं कृतं तेन समास्सहस्रं रहस्यमेतत्पितरो वदन्ति ॥

अत्र शुक्लपक्षे तृतीया, पञ्चदशी कृष्णपक्षे इत्यन्वयः । अत एव नारदीयपुराणम्—

द्वे शुक्ले द्वे च कृष्णे तु युगाद्याः कवयो विदुः ।

इति । ब्रह्मपुराणे तु माघस्य पौर्णमासी युगादिरित्युक्तं—

वैशाखशुक्लपक्षस्य तृतीयायां कृतं युगम् ।

कार्तिके शुक्लपक्षे च त्रेता च नवमेऽहनि ॥

अथ भाद्रपदे कृष्णे त्रयोदश्यां तु द्वापरम् ।

माघे च पौर्णमास्यां तु घोरं कलियुगं तथा ॥

युगारम्भास्तु तिथयो युगाद्यास्तेन विश्रुताः ।

सूर्यस्य सिंहसंक्रान्त्यामन्तं कृतयुगस्य तु ॥

अथ वृश्चिकसंक्रान्त्यामन्तं त्रेतायुगस्य तु ।

ज्ञेयो वृषभसंक्रान्त्यां द्वापरान्तश्च संख्यया ॥

तथाच कुम्भसंक्रान्त्यामन्तः कलियुगे स्मृतः ।

युगादिषु युगान्तेषु श्राद्धमक्षय्यमुच्यते ॥

इति । पुराणेऽपि—

वैशाखस्य तृतीया या नवमी कार्तिकस्य तु ।

पौर्णमासी तु माघस्य नभस्ये च त्रयोदशी ।

युगादयस्स्मृता हेता दत्तस्याक्षयकारकाः ।

तथा मन्वन्तरादौ च देयं श्राद्धं विजानता ।

इति । अत्र कल्पभेदेन व्यवस्थेति केचित् । अत्र पुल  
स्त्योक्तो विशेषः—

अयनद्वितये श्राद्धं विषुवद्वितये तथा ।

युगादिषु च सर्वेषु पिण्डनिर्वापणादृते ॥

मन्वन्तरादयस्तु मत्स्यपुराणे दर्शिताः—

अश्वयुक्छुक्लनवमी कार्तिके द्वादशी सिता ।

तृतीया चैत्रमासस्य तथा भाद्रपदस्य च ।

फाल्गुनस्य त्वमावास्या पुष्यस्यैकादशी सिता ॥

आषाढस्यापि दशमी माघमासस्य सप्तमी ।

श्रावणस्याष्टमी कृष्णा तथाऽऽषाढी च पूर्णिमा ॥

कार्तिकी फाल्गुनी चैत्रे ज्येष्ठे पञ्चदशी सिता ।

मन्वन्तरादयस्त्वेते दत्तस्याक्षयकारकाः ॥

इति स्मृतिचन्द्रिकायां श्राद्धकालाः.



अथ अमावास्याद्वैधनिर्णयः.

अत्र गौतमः—

‘अथ श्राद्धममावास्यायां पितृभ्यो दद्यात्’ इति ।  
अमावास्या कृष्णपक्षस्य पञ्चदशी तिथिः । तस्यां श्राद्धं  
कार्यमित्यर्थः । तत्र कात्यायनोक्तो विशेषः—

पिण्डान्वहार्यकं श्राद्धं क्षीणे राजनि शस्यते ।

वासरस्य तृतीयेऽंशे नातिसन्ध्यासमीपतः ॥

इति । पिण्डपितृयज्ञाङ्गभूतातां पिण्डानामनु पश्चादाह्रियते  
क्रियत इति पिण्डान्वहार्यकं श्राद्धममावास्यायां क्षीणे रा-  
जनि इन्दौ कर्तव्यमित्यर्थः । सोपीन्दुक्षयः कदा भवती-  
त्यपेक्षिते स एवाह—

अष्टमांशे चतुर्दश्याः क्षीणो भवति चन्द्रमाः ।

अमावास्याष्टमांशे च पुनः किल भवेदणुः ॥

इति । एवंच तिथिद्वैधे सिनीवाल्यामेव श्राद्धं कार्यमित्युक्तं  
भवति । उक्तं च व्यासेन—

दृष्टचन्द्रा सिनीवाली नष्टचन्द्रा कुहूर्मता ।

सिनीवाली यदा पित्र्ये कुहूर्दैवे तु कर्मणि ॥

हारीतोपि—

यस्यां सन्ध्यागतस्सोमो मृणाळमिव दृश्यते ।

अपराद्धे क्षयस्तस्यां पिण्डानां करणं ध्रुवम् ॥

इति । यस्यां तिथौ शर्वर्यां पूर्वस्यां दिशि सन्ध्यागतस्तोमः  
सूक्ष्म इव दृश्यते तस्यामपराह्णे चन्द्रक्षय इति तत्रैव श्रा-  
द्धं कार्यमित्यर्थः । एतच्च कर्मकालव्यापिन्यां सिनीवाल्यां द्र-  
ष्टव्यं, अन्यथा दोषश्रवणात्, तथाच बोधायनः—

मध्याह्नात्परतो यत्र चतुर्दश्यनुवर्तते ।

सिनीवाली तु सां ज्ञेया पितृकार्ये तु निष्फला ॥

इति । उक्तलक्षणा सिनीवाली पितृकार्ये निष्फलेति ज्ञेये-  
त्यर्थः । बृहस्पतिरपि—

मध्याह्नाद्या त्वमावास्या परस्तात्संप्रवर्तते ।

भूतविद्धा तु सा ज्ञेया न सा पञ्चदशी भवेत् ॥

मध्याह्नात्परस्तात् कर्मकालप्रतिक्रम्येत्यर्थः । अनेनैवाभिप्रायेण  
काष्ठाजिनिरपि—

भूतविद्धाममावास्यां मोहादज्ञानतोपि वा ।

श्राद्धकर्मणि ये कुर्युस्तेषामायुः प्रहीयते ॥

इति । अतः कर्मकालव्यापिन्येव सिनीवाली ग्राह्येत्यर्थः ।

अत एव वृद्धमनुः—

यस्यामस्तं रविर्याति पितरस्ताम्रपासते ।

तिथिं तेभ्यो यतो दत्तो ह्यपराह्णस्त्वयंभुवा ॥

इति । यदा त्वेवंविधा सिनीवाली न लभ्यते तदा कर्म-  
कालव्यापिनी कुहूरेव ग्राह्येत्याह हारीतः—



अपराहः पितृणां तु याऽपराह्णानुयायिनी ।

सा ग्राह्या पितृकार्येषु न पूर्वाऽस्तानुयायिनी ॥

या कुहूरपराह्णानुयायिनी सैव ग्राह्या, न पुनरेवंविधा सिनी वालीत्यर्थः । एवञ्च तिथिद्वये या कर्मकालव्यापिनी सैव ग्राह्येत्युक्तं भवति । उक्तं च तेनैव—

भूतविद्धाऽप्यमावास्या प्रतिपन्मिश्रिताऽपि वा ।

पित्रये कर्मणि विद्वद्भिः ग्राह्या कुतुपकालिका ॥

भूतविद्धा चतुर्दशीविद्धा । स्मृत्यन्तरेऽपि—

मध्याह्नव्यापिनी या तु तिथिः पूर्वा पराऽपि वा ।

तदहः कर्म कुर्वीत ह्यसदृद्धी न कारणम् ॥

इति । यदा तु तिथिद्वयेऽपि कर्मकालव्यापिनी न भवति तदा भूतविद्धैव परिग्राह्येत्याह बोधायनः—

घटिकैकाऽप्यमावास्या प्रतिपत्सु न चेत्तथा ।

भूतविद्धाऽपि कर्तव्या दैवे पित्रये च कर्मणि ॥

इति । प्रतिपत्सु घटिकैका कर्मकालसंबन्धिनी यदि न स्यादित्यर्थः । अत एव जावालिः—

प्रतिपत्स्वप्यमावास्या पूर्वाह्नव्यापिनी यदि ।

भूतविद्धाऽपि सा कार्या पित्रये कर्मणि सर्वदा ॥

इति । एवञ्च यदुक्तं हारीतेन—

पूर्वाह्णे चेदमावास्या अपराह्णे न चेत्तु सा ।

प्रतिपद्यापि कर्तव्यं श्राद्धं श्राद्धविदो विदुः ॥

इति, तत् यत्र पूर्वद्युश्चन्द्रदर्शनासम्भवेन पिण्डापितृयज्ञोत्कर्षः,  
तत्र प्रतिपदि पिण्डापितृयज्ञविधानार्थं, अन्यथा पूर्वोक्तवच-  
नविरोधात् । यदापि तेनैवोक्तं—

तुलामकरमीनेषु कन्यायां मिथुने तथा ।

भूतविद्धाऽप्यमावास्या पूज्या भवति यन्नतः ॥

इति, एतत् व्रतोपवासादिविषयमिति कैश्चिद्रच्यारूपातम् ।

यदा तु तिथिद्वयेऽपि कर्मकालव्यापिनी तदा प्रचेतसोक्तं—

सिनीवाली कुहूश्चैव श्रुत्युक्ते श्राद्धकर्मणि ।

स्यातां चेत्ते तु मध्याह्ने श्राद्धं दद्यात्कथं तदा ॥

तिथिक्षये सिनीवाली तिथिवृद्धौ कुहूस्तथा ।

साम्येऽपि च कुहूर्ज्ञेया वेदवेदाङ्गवेदिभिः ॥

साम्ये क्षयवृद्धयभावे । एवमविशेषेण सर्वेषामपि क्षये सिनी-

वाल्यामेव श्राद्धप्राप्तौ विशेषार्थमाह लौगाक्षिः—

सिनीवाली द्विजैः कार्या साग्निकैः पितृकर्मणि ।

स्त्रीभिश्शूद्रैः कुहूः कार्या तथाचानाग्निकैर्द्विजैः ॥

इति । एवञ्च क्षये साग्निकैः सिनीवाल्यां श्राद्धं कार्यम् ।

वृद्धौ तु सर्वैरेव परेद्युः कार्यमित्यनुसन्धेयम् । नन्वेवमपि न

क्षयमात्रे साग्निकैस्सिनीवाली ग्राह्या । यत्र क्षये सिनीवा-

ल्यां पिण्डापितृयज्ञः तत्रैव । अन्यथा—

पितृयज्ञं तु निर्वर्त्य विप्रश्चन्द्रक्षयेऽग्निमान् ।

पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं कुर्यान्मासानुमासिकम् ॥



इति मनुना साग्निकैः कृते पिण्डपितृयज्ञे श्राद्धविधानाघ-  
टनात् । अतो यत्र क्षये कुद्वां पिण्डपितृयज्ञस्तत्र साग्निकै-  
रपि सैव ग्राह्येति । मैवं, दिनद्वयेऽपि मध्याह्नव्यापित्वे क्षये  
सिनीवाल्यामेव चन्द्रदर्शनसम्भवेन कदाचिदपि पिण्डपितृ-  
यज्ञाप्राप्तेः 'यदहश्चन्द्रमसं न पश्यन्ति तदहः पिण्डपितृयज्ञं  
कुर्वीत' इत्यापस्तम्बेन चन्द्रादर्शन एव पिण्डपितृयज्ञविधा-  
नात् । चन्द्रादर्शनं च यत्र चतुर्दशी मुहूर्तत्रयादर्वागेव स-  
माभ्यते तत्रैवेति ज्योतिषशास्त्रे प्रसिद्धम् । अतो यत्र श्राद्ध-  
दिने चन्द्रादर्शने च पिण्डपितृयज्ञप्राप्तिः तत्राग्निमान् कृत्वैव  
पितृयज्ञं श्राद्धं कुर्यादिति मनुना नियम्यते, न पुनस्सर्वत्र  
कृतपिण्डपितृयज्ञस्यैव अग्निमतः श्राद्धाधिकार इति पितृयज्ञ-  
शब्दस्य पिण्डपितृयज्ञपरत्वमङ्गीकृत्योक्तम् । परमार्थतस्तु—पितृ-  
यज्ञशब्दः तर्पणाख्यपितृयज्ञपर एव । तदुक्तं मत्स्यपुराणे—

पितृयज्ञं तु निर्वर्त्य तर्पणाख्यं तु योऽग्निमान् ।

पिण्डान्वाहार्यकं कुर्याच्छ्राद्धमिन्दुक्षये सदा ॥ इति ॥

इति स्मृतिचन्द्रिकायाममावास्याद्वैधनिर्णयः

अथान्यान्यप्यमावास्याविषयाणि कानिचिद्वचनानि लिख्यन्ते.  
तत्र व्यासः—

अमा वै सोमवारेण रविवारेण सप्तमी ।

चतुर्थी भौमवारेण विषुवत्सदृशं फलम् ॥

अमा अमावास्या । शङ्कोऽपि—

अमावास्या तु सोमेन सप्तमी भानुना सह ।

चतुर्थी भूमिपुत्रेण सोमपुत्रेण चाष्टमी ॥

चतस्रस्तिथयस्त्रेताः तुल्यास्स्युर्ग्रहणादिभिः ।

सर्वमक्षयमत्रोक्तं स्नानदानजपादिकम् ॥

भूमिपुत्रो मङ्गलः । सोमपुत्रो बुधः । श्रीविष्णुपुराणेऽपि—

अमावास्या यदा मैत्रविशाखास्वातियोगिनी ।

श्राद्धे पितृगणस्तृप्तिमवाप्नोत्यष्टवर्षिकीम् ॥

मैत्रमनूराधा ।

अमावास्या यदा पुष्ये रौद्र ऋक्षे पुनर्वसौ ।

द्वादशाब्दं तदा तृप्तिं प्रयान्ति पितरोऽर्चिताः ॥

रौद्रमार्द्रा ।

वासवाजैकपादक्षे पितॄणां तृप्तिमिच्छताम् ।

वारुणेनाप्यमावास्या देवानामपि दुर्लभा ॥

वासवं वसुदैवत्यं धनिष्ठानक्षत्रम् । अजैकपादक्षं पूर्वभाद्र-

नक्षत्रम् । वारुणं शतभिषङ्गक्षत्रम् ।

माघासिते पञ्चदशी कदाचिदुपैति योगं यदि वारुणेन ।

ऋक्षेण कालस्स परः पितॄणां न ह्यल्पपुण्यैरुपलभ्यतेऽसौ ॥

काले धनिष्ठा यदि नाम तस्मिन् भवेत्तु भूपाल तदा

पितृभ्यः ।

दत्तं जलान्नं प्रददाति तृप्तिं वर्षायुतं तत्कुलजैर्मनुष्यैः ॥



तस्मिन् काले माघासितपञ्चदश्यामित्यर्थः ।

तत्रैव चेद्वादपदास्तु पूर्वाः काले तदा यत्क्रियते पितृभ्यः ।

श्राद्धं परां वृत्तिमुपेत्य तेन युगान् सहस्रं पितरस्स्वपन्ति ॥

तत्रैव तस्यामेव पञ्चदश्यामित्यर्थः ॥

इति स्मृतिचन्द्रिकायाममावास्याविषयाणि.

अथ प्रसङ्गात्पूर्वापि निर्णीयते.

तत्र गोभिलः—‘यः परमो विप्रकर्षस्मूर्याचन्द्रमसोस्सा पौर्ण-  
मासी, यः परमस्सन्निकर्षस्साऽमावास्या’ इति । ते च द्विविधे  
तथाच पुराणम्—

राका चानुमतिश्चैव पौर्णमासी द्विधा स्मृता ।

सिनीवाली कुहूश्चैव अमावास्या द्विधैव तु ॥

इति । अत्रानुमतिस्सिनीवाली च चतुर्दशीमिश्रा, राका कु-  
हूश्च प्रतिपन्मिश्रे । तथाच श्रुतिः—‘या पूर्वा पौर्णमासी  
साऽनुमतिः, योत्तरा सा राका, या पूर्वाऽमावास्या सा सि-  
नीवाली, योत्तरा सा कुहूः’ इति । अत्र व्यवस्थया कर्म-  
निर्णयमाह गोभिलः—‘पक्षान्ता उपवस्तव्याः पक्षादयोऽभि-  
यष्टव्याः’ इति । पक्षान्ताः पञ्चदश्य उपवस्तव्यास्तास्व-  
न्वाधानादि कार्यम् । पक्षादयः प्रतिपदः, ता अभियष्टव्याः ।

तासु हस्तावनेजनाद्यभीज्या कार्येत्यर्थः । अत्र लौगाक्षिणोक्तो

विशेषः—

त्रीनंशानौपधस्तस्य यागस्य चतुरो विदुः ।

द्वावंशावुत्सृजेदन्त्यौ यागे च व्रतकर्मणि ॥

अन्त्यः पादः पञ्चदश्या औपवस्तेऽन्वाधानादौ परिहर्तव्यः,  
पक्षादेश्चान्त्यः पादः यागे परिहरणीय इत्यर्थः । कथं तर्हि  
यागे चतुर इत्यपेक्षिते यज्ञपार्श्वः—

पञ्चदश्याः परः पादः पक्षादेः प्रथमास्त्रयः ।

कालः पार्वणयागे स्यादन्यथा तु न विद्यते ॥

वृद्धशातातपोपि —

पर्वणो यश्चतुर्थोऽश आद्याः प्रतिपदस्त्रयः ।

यागकालस्स विज्ञेयः प्रातरुक्तो मनीषिभिः ॥

इति । अनेन प्रतिपच्चतुर्थीशे न यष्टव्यमित्युक्तं भवति ।  
उक्तं च कात्यायनेन—

न यष्टव्यं चतुर्थीशे यागैः प्रतिपदः क्वचित् ।

रक्षांसि तद्विलुम्पन्ति श्रुतिरेषा सनातनी ॥

इति । यत्तु श्रुतौ 'सन्धौ यजेत' इति, तत्र सन्धेरति-  
सूक्ष्मत्वात्तत्र यागानुपपत्तेः तत्समीपकाललक्षणायां प्रस्तुता-  
यामविशेषात्सन्धिशब्दस्मन्निहितपर्वप्रतिपदात्मककालद्वयम् इत्य-  
विरोधः । अत एव श्रुत्यन्तरं—'सन्धिमाभितो यजेत' इति ।  
पर्वप्रतिपदोस्सन्धिमभित उभयतो यजेतेत्यर्थः । अतो यत्र  
पर्वचतुर्थीशे यागस्तत्रादिप्रतिपद्येव यागसमाप्तिः, अन्यथा  
'सन्धिमभितः' इति श्रुतिविरोधात् । उक्तं च गर्गेण—



प्रतिपद्यप्रविष्टायां यदा त्विष्टिस्समाप्यते ।

पुनः प्रणीय कृत्स्नोष्टिः कर्तव्या यागवित्तमैः ॥

इति । प्रतिपद्योगे तु सन्धेः पूर्वमग्न्यन्वाधानादित्यविरोधः ।  
सन्धिपरिज्ञाने तु स्मृत्यन्तरे विशेषो दर्शितः—

तिथेः परस्या घटिकास्तु यास्स्युः

न्यूनास्तथा चाभ्यधिकास्तु तासांश्च ।

अर्धं वियोज्यं च तथा प्रयोज्यं

ह्रासे च वृद्धौ प्रथमे दिने तत् ॥

इति । परस्यास्तिथेः प्रतिपदो या घटिकाः पूर्वस्यास्तिथेस्स्युः  
न्यूना अधिका वा तासामर्धं पूर्वस्मिन् दिने ह्रासे वियोज्यं  
वृद्धौ तु संयोज्यमित्यर्थः । अनेन राकाकुहोरुत्तरेऽहनि च  
यत्पर्वप्रतिपदोः घटिकावृन्दं तदहर्भरितं तदेकीकृत्य द्वेधा  
विभज्य सन्धिपरिज्ञानं कार्यमित्युक्तं भवति । एवञ्च यस्मि-  
न्नहनि पर्वसन्धिस्तास्मिन्नुत्तरेद्युर्वा प्रातः पर्वचतुर्थांशादिविहि-  
तसन्धिसम्भवः तत्रैव यागो नान्यत्रेत्यनुसन्धेयम् । अत एव  
लौगाक्षिः—

पूर्वाह्णे वाऽथ मध्याह्ने यदि पर्व समाप्यते ।

उपोष्य तत्र पूर्वद्युः तदहर्भाग इष्यते ॥

अपराह्णेऽथवा रात्रौ यदि पर्व समाप्यते ।

उपोष्य तस्मिन्नहनि श्वोभूते याग इष्यते ॥ इति ॥

तत्रैव विहितकालसम्भवादिति भावः । गृह्यकारिकाऽपि—

पञ्चदशी प्रतिपच्च समेते एकदिने महती यदि तस्मिन् ।

पञ्चदशी प्रकृतेरुपवासः पञ्चदशीह तनुर्यदि यागः ॥

इति । समेते सम्बद्धे इत्यर्थः । अनेनैवाभिप्रायेणापस्तम्बोऽपि—‘यदहः पुरस्ताच्चन्द्रमाः पूर्ण उत्सर्पेतां पौर्णमासीमुपवसेत् । श्वः पूरितेति वा । खर्विकां तृतीयां वाजसनेयिनस्समामनन्ति । यदहर्न दृश्यते तदहरमावास्या । श्वो नद्रष्टार इति वा’ इति । तत्र खर्विकासूत्रस्यार्थ उपरिष्ठाद्विष्यति । यदहः पुरस्ताच्चन्द्रमाः पूर्ण उत्सर्पेत् यदहर्न दृश्यते इति च सूत्रद्वयस्यायमर्थः । सर्वथा तावद्राकाकुहोरेव चन्द्रमसः पूर्णत्वमदर्शनत्वं चेति ज्योतिषशास्त्रे प्रसिद्धम् । तत्र यस्मिन्नहनि पुरस्तात्पूर्वस्यां दिशि चन्द्रमाः पूर्ण उत्सर्पेत् उदयाह्न दृश्येत वा तत्र यद्यप्यपराह्णे रात्रौ वा पर्वसन्धिः तदा पौर्णमासीममावास्यां वोपवसेदिति । यदा तु पूर्वाह्णे वा मध्यन्दिने वा पर्वसन्धिस्तदा यस्याहश्चन्द्रमाः पूरिता पूर्णो भविता यस्यां वा नद्रष्टारो नेक्षितारो भवेयुः तामनुमतिं सिनीवालौ वोपवसेदिति श्वःपूरिता श्वो नद्रष्टार इति वेति सूत्रद्वयस्यायमर्थः । उक्तं च भाष्यार्थसङ्ग्रहकारेण —

अपराह्णेऽथवा रात्रौ यदि पर्व समाप्यते ।

उपोष्या तत्र राका स्यात् सा पूर्णोत्सर्पिलक्षणा ॥

पूर्वाह्णे वाऽथ मध्याह्णे यदि पर्व समाप्यते ।

उपोष्याऽनुमतिस्तत्र सा श्वःपूरितलक्षणा ॥



अपराह्णे क्षपायां वा पर्वसन्धिर्भवेद्यदि ।

उपोष्या तु कुहूस्तत्र यदहर्नेतिलक्षणा ॥

पूर्वाह्णे वाऽथ मध्याह्णे पर्वसन्धिर्यदा भवेत् ।

तत्रोपोष्या सिनीवाली श्वो नद्रष्टारलक्षणा ॥

इति । तत्र पूर्वाह्णापराह्णशब्दाभ्यां द्वेधा विभक्तस्याहः पूर्वा-  
परभागौ प्रतिपाद्येते । मध्याह्णशब्देन तु तयोसन्धिरित्यनुस-  
न्धेयम् । नन्वत्र—पूर्वाह्णादिशब्दानां त्रेधा विभक्तस्याहः क्र-  
मेण भागत्रयपरत्वमस्तु । मैवं, तस्मिन् पक्षे मध्याह्नस्याव-  
र्तनादुपरिघटिकापञ्चकपर्यन्तत्वात्तत्र सन्धौ तदहरेव यागः  
प्रसज्येत । न च प्रसज्यतामिति वाच्यं, तत्र प्रातः पर्वचतु-  
र्थीशादिविहितकालासम्भवेन 'पर्वणो यश्चतुर्थोऽशः' इत्यादि-  
वचनविरोधात् । ननु—द्वेधा विभागेन यत्रावर्तनादुपरि घटि-  
कामात्रे पर्वसन्धिः तत्रोत्तरेद्युरेव याग इति तत्रापि  
कालासम्भवाद्बचनविरोधस्तुल्य एव । मैवम्, 'पर्वणो य  
श्चतुर्थोऽशः' इत्यादिकालस्य यागान्वयावगतेः भवितव्यं  
तावद्यागस्य कालान्वयेनेत्युपगन्तव्यम् । एवञ्च तत्रोत्तरेद्यु-  
र्यागे क्रियमाणे न यागस्य कालान्वय इति पूर्वोद्युरेव याग  
इत्यविरोधः । एवं सर्वत्र द्रष्टव्यम् । नन्वेवं तर्ह्यपराह्णस-  
न्धावुत्तरेद्युर्यागविधानं विरुध्येत । मैवं, यत्रापराह्णे पर्वस-  
न्धावुत्तरेद्युः प्रतिपञ्चतुर्थींशे यागो न भवति, तथाविधापरा-  
ह्णस्यैवात्र ग्रहणमित्यविरोधः । युक्तं चैतत्, अन्यथा हेम-

न्तकालेऽतिस्वल्पत्वादह्नां तत्र किञ्चिद्नचतुर्दशघटिकामात्र  
 आवर्तनं भवति । तथा तत्रैव तिथिवृद्धौ कदाचित् षोडश-  
 नाडिकोपि चतुर्थांशो भवति । तत्रावर्तनादुपरि घटिकामात्र  
 पर्वसन्धावुत्तरेद्युरेव यागः प्रसज्येत, न चैतद्युक्तं, तत्र वि-  
 हितकालासम्भवान्न यष्टव्यमिति निषेधात् पूर्वद्युः कालस-  
 म्भवाच्च । अत्रोक्तापराह्णशब्दस्य सङ्कोच एव स्यात् ज्या-  
 यान् । किञ्च—ग्रीष्मकालेऽह्नामतिदीर्घत्वाच्च त्रपादाधिकषोडशघ-  
 टिकात्मके काले आवर्तनं भवति । तथा तत्रैव तिथिहासे  
 कदाचित्सार्धत्रयोदशनाडिकोपि पर्वचतुर्थांशो भवति । तत्र  
 यदा पादोनावर्तनेन पर्वसन्धिः तदा पूर्वाह्न एव पर्वसन्धि-  
 रिति तदहरेव यागस्स्यात् । न चैतद्युक्तम्, तत्र प्रातः प-  
 र्वचतुर्थांशादिविहितकालासम्भवात् । अस्मिन् पक्षे तूत्तरेद्युरेव  
 यागः, तत्रैव विहितकालासम्भवात् । अतएवोक्तमापस्तम्बेना-  
 पि 'खर्विकां तृतीयां वाजसनेयिनस्समामनन्ति' इति । ख-  
 र्विकामल्पिकामिति यावत् । अल्पत्वं च दिनार्धत्वाभावात् ।  
 उक्तं च भाष्यार्थसङ्ग्रहकारेण—

मध्यन्दिनात्स्यादहनीह यस्मिन् प्राक्पर्वणस्सन्धिरियं तृतीया ।

सा खर्विका वाजसनेयिमत्या तस्यामुपोप्याथ परेद्युरिष्टिः॥  
 इति । अमावास्यायां तु सुतरामत्रोत्तरेद्युरेव यागः, उदया-  
 त्प्रागेव तस्यास्तत्र प्रारम्भात् । नन्वेवं तर्हि पूर्वाह्नसन्धौ तद-  
 हरेव यागाविधानं विरुध्येत । मैवम्, तस्यैतद्व्यतिरिक्तविष-



यान्तरसम्भवेनाविरोधात् । ननु तर्हि 'पूर्वाह्णे वाऽथ मध्याह्णे'  
इति लौगाक्षिवचनबलादेव विहितकालाभावेऽपि तत्रैव या-  
गोऽस्तु । मैवम्,

पञ्चदश्याः परः पादः पक्षादेः प्रथमास्त्रयः ।

कालः पार्वणयागे ख्यादन्यथा तु न विद्यते ॥

इति वचनार्थाशोदितकालव्यतिरेकेण कालान्तराभावस्मर-  
णात् । किञ्च—एवंसति 'पर्वणो यश्चतुर्थांशः' इत्यादिका-  
लविधायकशास्त्राणां विषयासम्भवेन वैयर्थ्यमेव ख्यात् । अतो  
यत्कैश्चिदुक्तम्—'अपराहसन्धावुत्तरेद्युः प्रतिपञ्चतुर्थांशेऽपि या-  
गो न दोषाय' इति, तदपास्तम् । एवञ्च यदुक्तं कात्या-  
यनेन—

यजनीयेऽह्नि सोमश्चेत् वारुण्यां दिशि दृश्यते ।

तत्र व्याहृतिभिर्हुत्वा दण्डं दद्याद्विजातये ॥

इति, यदापि स्मृत्यन्तरं—

त्रिमुहूर्ता द्वितीया चेत्प्रतिपद्यापरह्निकी ।

अन्वाधानं चतुर्दश्यां परतस्सोमदर्शनात् ॥

इति, तत् पूर्वाह्नपर्वसन्धिविषयमित्यवगन्तव्यम् । यदापि वच-  
नान्तरं—

षोडशेऽहन्यभीष्टेष्टिर्मध्या पञ्चदशेऽहनि ।

चतुर्दशे जघन्येष्टिः पापा सप्तदशेऽहनि ॥

इति, तेन सप्तदशेऽहनीष्टिं न कुर्यान्नान्वादधीतेति तत्रान्वा-  
धानमेव निषिध्यते न यागः । तथात्वे तिथिवृद्धौ विशिष्टै-  
रननुष्ठानमेव स्यात् । अतो यजनीयदिनादारभ्य सप्तदशेऽह-  
न्यौपवसथकर्म न कार्यमित्यवगन्तव्यम् । अत एव बोधायनः—

यत्रौपवसथं कर्म यजनीयात्त्रयोदशम् ।

भवेत्सप्तदशं वाऽपि तत्प्रयत्नेन वर्जयेत् ॥

इति । ननु दिनद्वयस्य क्षयवृद्धयोस्सम्भवात्त्रयोदशेऽहनि स-  
प्तदशेऽहनि वा कदाचिदौपवसथं कर्म न प्राप्तमिति कथं नि-  
षेधः ? उच्यते—यद्यप्राप्तिः तर्हि ‘नान्तरिक्षे न दिवि’ इति-  
बलित्यानुवाद इति सर्वमनवद्यम् । पौर्णमास्यां त्वापस्तम्बो-  
क्तो विशेषः—‘पौर्णमास्यामन्वाधानपरिस्तरणोपवासासद्यो-  
वा सद्यस्कालायां सर्वं क्रियते’ इति । अस्यार्थः—सद्यस्का-  
लायां पौर्णमास्यामग्न्यन्वाधानादीनि सद्यः समानेऽहनि क्रि-  
यन्ते पूर्वद्युर्वा तत्र सर्वं ब्राह्मणतर्पणान्तं क्रियते । नेडा-  
न्तादिकमित्युक्तं भाष्यार्थसङ्ग्रहकारेण—

अन्वाहितश्चास्तरणोपवासाः पूर्वद्युरेते खलु पौर्णमास्याम् ।

आवर्तनात् प्राग्यदि पर्वसन्धिः सद्यस्तदा वा क्रि-  
यते समस्तम् ॥

इति । आवर्तनात्प्राक् सङ्गवादूर्ध्वमिति शेषः ।

सन्धिश्चेत्सङ्गवादूर्ध्वं प्राक्पर्यावर्तनाद्रवेः ।

सा पौर्णमासी विज्ञेया सद्यस्कालविधौ तिथिः ॥



इति कात्यायनस्मरणात् । केचित्तु—‘पौर्णमास्याम्’ इत्यादि  
‘सद्यो वा’ इत्येतदन्तमेकं सूत्रं, अपरं तु ‘सद्यस्कालायां सर्वं  
क्रियते’ इति वदन्ति । तत्र सर्वस्यां पौर्णमास्यामग्न्यन्वाधानादि  
सद्यः पूर्वद्युर्वा क्रियत इति पूर्वसूत्रस्यार्थः । द्वितीयस्य तु सद्य-  
स्काला विकृतिः तस्यां सर्वं ब्राह्मणतर्पणान्तं क्रियते नेडान्तादि  
कमिति । नैतद्युक्तं, अपराहसन्धौ सद्यस्कालपक्षे ‘सन्धिम-  
भितो यजेत’ इति श्रुतिविरोधात् एवं प्रकृतावुक्तम् ।  
विकृतौ यद्यपि ‘दर्शपूर्णमासाविष्टीनां प्रकृतिः’ इत्यनेन दर्शपूर्ण-  
मासिकाविध्यन्तातिदेशादत्रापि स एव पर्वचतुर्थीशादिल-  
क्षणः काल इति प्रतिभाति । तथाऽपि ‘यदीष्ट्या यदि  
पशुना यदि सोमेन यजेतामावास्यायां पौर्णमास्यां वा य-  
जेत’ इत्यापस्तम्बेन विकृतौ पुनःकालविधानात्पञ्चदश्या-  
मेव यागसमापत्तिः, अतो यत्र सम्पूर्णेव पञ्चदशी प्रतिपञ्च  
तत्र पञ्चदश्यामेव विकृतिं समाप्यानन्तरं प्रकृतेरग्न्यन्वाधा-  
नादि । खण्डतिथौ यदा पूर्वाह्ने पर्वसन्धिः तदा पूर्वद्युरुपदि  
ष्टकालासम्भवात्सम्भवेऽपि कर्मोपक्रमदशायामसम्भवेन साङ्ग  
प्रधानाव्यापित्वात् ‘साङ्गप्रधानं देशे काले कर्तरीति निर्दि-  
श्यते’ इत्यापस्तम्बेन साङ्गस्यैव विहितकालसम्बन्धविधानात् ।  
उक्तं परेद्युरपि । प्रकृतेः पूर्वोक्तत्वात् ‘अपूर्वमन्ते स्यात्’ इत्याप-  
स्तम्बेनैव विकृतेः पूर्वं प्रकृतिविधानात् अनन्तरमेवातिदेशिक  
प्रतिपदाद्यभागत्रयेऽङ्गप्रधानपर्याप्तोर्विकृत्यनुष्ठानमवगन्तव्यम् । यदा

त्वपराह्णे राजौ वा पर्वसन्धिः तदा तदहरेव यागः, तत्रै-  
वोपदिष्टकालसम्भवात् । एतत्सर्वमभिसन्धायोक्तम्—

आवर्तनात्प्राग्यदि पर्वसन्धिः

कृत्वा तु तस्मिन् प्रकृतिं विकृत्याः ।

तदैव यागः परतो यदि स्यात्

तस्मिन्विकृत्याः प्रकृतेः एव ॥

इति । एवं पशावपि द्रष्टव्यम् । अत एव तत्राप्युक्तम्—

अवर्गहो भवति नियतः पर्वसन्धिः पुरस्तात्

कृत्वा तस्मिन्नहानि तु पशून् सद्य एव द्वयहं वा ।

आरभ्याथ प्रकृतिरथ चेत्पर्वसन्धिः परस्तात्

कृत्वा तस्मिन्प्रकृतिमथ तु स्यात्पशुस्सद्य एव ॥

इति । पूर्वाह्नसन्धायुत्तरेद्युर्विहितकालासम्भवात्सद्य एवेत्युक्तम् ।

उपदेशस्तत्रापि द्वयहकालतामाह । तन्न यष्टव्यमित्यादिवचनावि-  
रुद्धमित्युपेक्षणीयमेव ॥

इति स्मृतिचन्द्रिकायां पर्वनिर्णयः.

अथ प्रसङ्गात्तिथिद्वैधनिर्णयः.

तत्र स्कन्दपुराणं—

प्रतिपत्प्रभृतयस्सर्वा उदयादोदयाद्रवेः ।

सम्पूर्णा इति विख्याता हरिवासरवर्जिताः ॥



इति । अत्र सम्पूर्णासु निस्सन्दिग्धमेव कर्मानुष्ठानम् । यत्र पुनः क्षयवृद्धिभ्यां तिथिद्वैविध्यं तत्र निगमोक्तं—

युग्माग्नियुगभूतानां षण्मुन्योर्वसुरन्ध्रयोः ।

रुद्रेण द्वादशी युक्ता चतुर्दश्या च पूर्णिमा ॥

प्रतिपदाऽप्यमावास्या तिथ्योर्युग्मं महाफलम् ।

एतद्व्यस्तं महादोषं हन्ति पुण्यं पुराकृतम् ॥

इति । तत्र युग्मादिरन्धान्त्यैः शब्दैः क्रमेण द्वितीयादिनव-  
म्यन्तानां ग्रहणं, तिथ्योर्युग्ममित्यभिधानात् । रुद्र एकादशी ।  
द्वितीयादिप्रतिपदन्तासु क्रमेण द्वयोर्द्वयोस्तिथ्योः परस्परमेव  
युग्मं महाफलं, न पुनर्व्यस्ततिथ्यन्तरयुग्ममित्यर्थः । अनेनो-  
क्तयुग्मतिथिसप्तके पूर्वा तिथिः उत्तरविद्धा ग्राह्या । उत्तरा  
तु पूर्वविद्धेत्युक्तं भवति । तृतीयादिषडशमीत्रयोदश्यावपि  
पूर्वविद्धे । तथाच पैठीनसिः—

पञ्चमी सप्तमी चैव दशमी च त्रयोदशी ।

प्रतिपन्नवमी चैव कर्तव्या संमुखा तिथिः ॥

इति । संमुखा पूर्वविद्धेत्यर्थः । 'संमुखा नाम सायाह्नव्या-  
पिनी दृश्यते यदा' इति स्कन्दपुराणे दर्शनात् । यत्तु  
निगमवाक्ये तृतीयापौर्णमास्योः पूर्वविद्धत्वमुक्तं, तत् व्रत  
विशेषाभिप्रायम् । अत एव ब्रह्मकैवर्ते—

रम्भाख्यां वर्जयित्वा तु तृतीयां द्विजसत्तम ।

अन्येषु सर्वकार्येषु गणयुक्ता प्रशस्यते ॥

भूतविद्धा न कर्तव्या अमा पूर्णा कदाचन ।

वर्जयित्वा मुनिश्रेष्ठ सावित्रीव्रतमुत्तमम् ॥

इति । रम्भाख्यां तृतीयां रम्भातृतीयाख्यं व्रतमित्यर्थः ।

गणयुक्ता चतुर्थीयुक्ता अमा अमावास्या एवञ्च यदुक्तं ना-  
रदीयपुराणे—

दर्शं च पूर्णमासं च पितुस्सांवत्सरं दिनम् ।

पूर्वविद्धमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते ॥

इति, तदपि सावित्रीव्रतविषयमित्यनुसन्धेयम् । उपवासे तु प-  
रान्वितैव ग्राह्या । तथाच बृहस्पतिः—

एकादश्यष्टमी षष्ठी पौर्णमासी चतुर्दशी ।

अमावास्या तृतीया च ता उपोष्याः परान्विताः ॥

इति । बृहद्वसिष्ठोऽपि—

द्वितीया पञ्चमी वेधात् दशमी च त्रयोदशी ।

चतुर्दशी चोपवासे हन्युः पूर्वोत्तरे तिथी ॥

उपवासे सप्तमी तु वेधाद्धन्त्युत्तरं दिनम् ।

इति । द्वितीयाद्यास्तिथयो वेधात् उपवासे स्वपूर्वोत्तरे तिथी  
हन्युः, सप्तमी तु स्वोत्तरामेवेत्यर्थः । अनेन प्रतिपत्तृतीया च  
द्वितीयाविद्धे न ग्राह्ये इत्युक्तं भवति । एवं पञ्चम्यादिष्वपि  
द्रष्टव्यम् । एवञ्च यज्ञिगमवाक्ये चतुर्थ्या उत्तरविद्धत्वमुक्तं,  
तदुपवासव्यतिरिक्तविषयमित्यवगन्तव्यम्, अस्मिन्वाक्ये पूर्व-  
विद्धाया उपादेयत्वस्मरणात् । यदपि ब्रह्मकैवर्ते—



प्रतिपत्संमुखा कार्या द्वितीया द्विजसत्तम ।

इति प्रतिपद्विद्धाया उपादेयत्वमुक्तं, तदप्युपवासव्यतिरिक्त-  
विषयम् । उपवासे परविद्धाया एवोपादेयत्वस्मरणात् । त-  
थाच श्रीविष्णुपुराणे—

एकादश्यष्टमी षष्ठी द्वितीया च चतुर्दशी ।

अमावास्या तृतीया च उपोष्यास्स्युः परान्विताः ॥

इति । अत्र चतुर्दश्यां परविद्धत्वं शुक्लपक्षाभिप्रायम् । अत  
एव निगमः—

एकादश्यष्टमी षष्ठी शुक्लपक्षे चतुर्दशी ।

पुण्याः परेण संयुक्ताः पराः पूर्वेण संयुताः ॥

इति । परा अनन्तरा इत्यर्थः ।

नागविद्धा तु या षष्ठी रुद्रविद्धो दिवाकरः ।

कामविद्धो भवेद्विष्णुर्न ग्राह्यास्तेषु वासराः ॥

नवम्येकादशी चैव दिशा विद्धा यदा भवेत् ।

तदा वज्र्या विशेषेण गङ्गाम्भः श्वदतौ यथा ॥

इति पुराणस्मरणात् । नागः पञ्चमी रुद्रोऽष्टमी दिवाकरस्स-  
प्तमी कामस्त्रयोदशी । विष्णुः द्वादशी । दिक् दशमी ।  
एवमष्टम्यपि द्रष्टव्या । अत एव स्मृत्यन्तरं—

कृष्णपक्षेऽष्टमी चैव कृष्णपक्षे चतुर्दशी ।

पूर्वविद्धा तु कर्तव्या परविद्धा न कस्यचित् ॥

शुक्लपक्षेऽष्टमी चैव शुक्लपक्षे चतुर्दशी ।

पूर्वविद्धा न कर्तव्या कर्तव्या परसंयुता ॥

उपवासादिकार्येषु ह्येष धर्मस्सनातनः ।

इति । त्रयोदश्याः परविद्धत्वं कृष्णपक्षाभिप्रायम् । अत एव निगमः—

षष्ठ्यष्टमी तथा दर्शः कृष्णपक्षे त्रयोदशी ।

एताः परयुताः पूज्याः पराः पूर्वयुतास्तथा ॥

परा अनन्तरा इत्यर्थः । एवञ्च यदुक्तं मार्कण्डेयेन—

शुक्लपक्षे तिथिर्ग्राह्या यस्यामभ्युदितो रविः ।

कृष्णपक्षे तिथिर्ग्राह्या यस्यामस्तमितो रविः ॥

इति, तत् शुक्लकृष्णपक्षव्यवस्थया व्यवस्थितचतुर्दश्यादिविषय-  
मित्यवगन्तव्यम् । यदापि देवलेनोक्तं—

यां तिथिं समनुप्राप्य उदयं याति भास्करः ।

सा तिथिस्सकला ज्ञेया स्नानदानजपादिषु ॥

इति, तत् यासां तिथीनामुत्तरविद्धानामुपादेयत्वमुक्तं तद्विष-  
यम् । यदापि तेनैवोक्तं—

यां तिथिं समनुप्राप्य अस्तं याति दिवाकरः ।

सा तिथिस्सकला ज्ञेया दानाध्ययनकर्मसु ॥

इति, तदापि यास्तिथयः पूर्वविद्धास्सत्यो ग्राह्याः तद्विषयम् ।  
सकला संपूर्णेत्यर्थः । एतच्च उदयव्यापिन्यास्तित्थेरल्पत्वेन  
तिथ्यन्तरानुष्ठानेऽपि तस्यामेव तिथावनृष्टितं भवतीति वक्तुम् ।  
अनेनैवाभिप्रायेण भविष्यत्पुराणेऽपि—



त्रतोपवासनियमे घटिकैका यदा भवेत् ।

सा तिथिस्सकला ज्ञेया पित्रर्थे चापराह्णिकी ॥

इति । अतोऽन्यत्र कर्मानुष्ठाने तिथिवृद्धिहासाभ्यामुपयोग-  
इति निर्णयः । उक्तं च विष्णुधर्मोत्तरे—

सा तिथिस्तदहोरात्रं यस्यामस्तमितो रविः ।

तदा कर्माणि कुर्वीत ह्रासवृद्धी न कारणम् ॥

इति । यदा तु नोत्तरेद्युः उदयव्यापिनी किंतु पूर्वैद्युः नि-  
षिद्धतिथिविद्धैव, तदा स्मृत्यन्तरोक्तं—

एकादशी तृतीया च षष्ठी चैव त्रयोदशी ।

पूर्वविद्धा तु कर्तव्या यदि न स्यात्परेऽहनि ॥

इति । एवञ्च यदुक्तं—

वर्धमानस्य पक्षस्य उदयात्पूज्यते तिथिः ।

यदा पक्षः क्षयं याति तदा स्यादापराह्णिकी ॥

इति, तत्र पक्षक्षये प्रायेण परेद्युरुदयव्यापिन्या असंभवात्पूर्-  
वविद्धैव परिग्राह्येति पूर्ववचनेन समानार्थम् । अत्र विशेष-  
माह ऋश्यशृङ्गः—

अविद्धानि निषिद्धैश्च न लभ्यन्ते दिनानि तु ।

मुहूर्तैः पञ्चभिर्विद्धा ग्राह्यैवैकादशी तिथिः ॥

तदर्धविद्धान्यन्यानि दिनान्युपवसेन्नरः ।

इति । निषिद्धैर्दिनैरविद्धानि दिनानि यदि न लभ्यन्ते तदो-

क्तलक्षणानि ग्राह्याणीत्यर्थः । यदा चैवंविधाऽपि तिथिः न लभ्यते तदाऽपि तेनैवोक्तं—

अविद्वानामलाभे तु पयोदधिघृतेन वा ।

सकृदेवाल्पमश्नीयादुपवासस्त्वसा भवेत् ॥

इति । सा तिथिस्सकला ज्ञेयेत्यस्य क्वचिदपवादमाह नारदीयपुराणे वसिष्ठः—

पारणे मरणे नृणां तिथिस्तात्कालिकी स्मृता ।

पित्रयेऽस्तमयवेद्यां स्पृष्टा पूर्णा निगद्यते ॥

इति । पारणे मरणे वा तात्कालिक्येव तिथिः न पुनस्सा तिथिः सकला ज्ञेयेत्येतद्भवतीत्यर्थः । एवं मन्वाद्यादावपि द्रष्टव्यम् । अत एव स्कन्दपुराणं—

मन्वादौ च युगादौ च ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।

व्यतीपाते च वैधृषां तत्कालव्यापिनी तिथिः ।

नक्तव्रते च संप्राप्ते तत्कालव्यापिनी तिथिः ॥

इति । तस्य नक्तव्रतस्य यः कालः प्रदोषाख्यः तद्व्यापिनी तिथिः ग्राह्येत्यर्थः । तथाच वसिष्ठः—

प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या तिथिर्नक्तव्रते सदा ।

एकादशीं विना सर्वाः शुक्ले कृष्णे समास्मृताः ॥

इति । प्रदोषपरिमाणं तु स्कन्दपुराणे उक्तं—

उदयात्प्राक्तनी संध्या घटिकात्रयमुच्यते ।

सायंसंध्या त्रिघटिका अस्तादुपरि भास्वतः ॥



त्रिमुहूर्ते प्रदोषस्स्याद्रवावस्तामि ते ततः ॥

इति । यदत्र संध्याद्वये मौनादि कार्यं, तदेतावति काले कार्यमित्यभिप्रायः । यदा तु दिनद्वयेऽपि प्रदोषव्यापिनी तिथिर्न भवति, तदा तु स्कन्दपुराणोक्तं—

प्रदोषव्यापिनी न स्याद्दिवा नक्तं विधीयते ।

आत्मनो द्विगुणां छायास्तिक्रामति भास्करे ॥

तन्नक्तं नक्तमित्याहुः न नक्तं निशि भोजनम् ।

एवं ज्ञात्वा ततो विद्वान् सायाहे तु भुजिक्तियाम् ॥

कुर्यान्नक्तव्रती नक्तफलं प्राप्नोति निश्चितम् ॥

इति । नक्षत्रोपवासे तु विष्णुनोक्तं—

उपोषितव्यं नक्षत्रं यस्मिन्नस्तमियाद्रविः ।

यत्र वा युज्यते राम निशीथश्शशिना सह ॥

इति । यत्र वा निशीथोऽर्धरात्रः शशिना नक्षत्रेणास्तमयादुपर्यारब्धेन संयुज्यते तद्वा नक्षत्रमुपोषितव्यमित्यर्थः । तथाच कुर्वन्तुः—

यत्रार्धरात्रादर्वाक्तु नक्षत्रं प्राप्यते तिथौ ।

तन्नक्षत्रव्रतं कुर्यादतीते पारणं भवेत् ॥

इति । प्राप्यते प्रारभ्यत इत्यर्थः । अतीते तस्मिन्नक्षत्रे इति

शेषः । एवं तिथिप्रयुक्तोपवासेऽपि द्रष्टव्यम् ।

तिथिनक्षत्रनियमे तिथिभान्ते च पारणम् ।

अतोऽन्यथा पारणात्तु व्रतभङ्गमवामुयात् ॥

इति स्मरणात् । एतन्नक्षत्रप्रयुक्तोपवासाविषयम् । नक्षत्रयुक्तायां  
तिथौ श्रीविष्णुपुराणे उक्तं—

याः काश्चित्तिथयः प्रोक्ताः पुण्या नक्षत्रयोगतः ।

तास्वेव तद्भूतं कुर्याच्छ्रवणद्वादशीं विना ॥

इति । कथं तर्हि श्रवणद्वादश्यामित्यपेक्षिते मत्स्यपुराणं—

द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य नक्षत्रं श्रवणं यदि ।

उपोष्यैकादशीं तत्र द्वादश्यां पूजयेद्भारिम् ॥ इति ॥

इति स्मृतिचन्द्रिकायां तिथिद्वैधनिर्णयः.

अथ तिथिप्रसङ्गादेकादश्यपि निर्णीयते.

तत्रादौ एकादशीमहिमा । तत्र नारदीयपुराणे वसिष्ठः—

एकादशीसमुत्थेन वद्विना पातकेन्धनम् ।

भस्मतां याति राजेन्द्र अपि जन्मशतोद्भवम् ॥

नेदृशं पावनं किञ्चिन्नराणां भूप विद्यते ।

यादृशं पद्मनाभस्य दिनं पातकहानिदम् ॥

तावत्पापानि देहेऽस्मिन् तिष्ठन्ति मनुजाधिप ।

यावन्नोपवसेज्जन्तुः पद्मनाभदिनं शुभम् ॥

अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ।

एकादश्युपवासस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥

एकादशेन्द्रियैः पापं यत्कृतं भवाति प्रभो ।



एकादश्युपवासेन तत्सर्वं विलयं नयेत् ॥  
 एकादशीसमं किञ्चित्प्रापत्राणं न विद्यते ।  
 स्वर्गमोक्षप्रदा ह्येषा राज्यपुत्रप्रसाधिनी ॥  
 सुकलत्रप्रदा ह्येषा शरीरारोग्यदायिनी ।  
 न गङ्गा न गया भूप न काशी न च पुष्करम् ॥  
 न चापि कौरवक्षेत्रं न रेवा न च देविका ।  
 यमुना चन्द्रभागा च तुल्या न च हरेर्दिनात् ॥  
 अनायासेन राजेन्द्र प्राप्यते वैष्णवं पदम् ।  
 चिन्तामणिसमा ह्येषा अथवाऽपि निधेस्समा ॥  
 सा कल्पपादपप्रख्या देवगोरुपमाऽथवा ।

नारदोऽपि—

एकामेकादशीं वाऽपि समुपोष्य जनार्दनम् ।  
 कामेनापि समभ्यर्च्य संसारान्मुक्तिमाप्नुयात् ॥  
 प्रसङ्गादथवा दम्भाल्लोभाद्वा त्रिदशाधिप ।  
 एकादश्यामनश्नन् यः सर्वदुःखाद्विमुच्यते ॥ इति ॥

इति स्मृतिचन्द्रिकायमेकादशीमहिमा.

अथैकादशीनिर्णयः.

तत्र देवलः—

न शङ्केन पिबेत्तोयं नाश्रीयात्कूर्मसूकरौ ।  
 एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ॥

कात्यायनोपि—

यानिकानि च पापानि ब्रह्महत्यासमानि च ।

अन्नमाश्रित्य तिष्ठन्ति सम्प्राप्ते हरिवासरे ॥

रटन्तीह पुराणानि भूयो भूयो वरानने ।

न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं सम्प्राप्ते हरिवासरे ॥

इति । न भोक्तव्यं उपोषितव्यमित्यर्थः । अत एव नारदः—

नित्यं भक्तिसमायुक्तैर्नरैर्विष्णुपरायणैः ।

पक्षे पक्षे तु कर्तव्यमेकादश्यामुपोषणम् ॥

इति । अत्रोपोषणं नित्यं कर्तव्यमित्यन्वयः । अनेनैकाद-

शीव्रतस्य नित्यत्वमुक्तं भवति । अत एवाकरणे दोषः पु-

राणे दर्शितः—

प्रतिग्रासं स भुङ्क्तेऽन्नं किल्बिषं श्वानविट्समम् ।

एकादश्यां सुरश्रेष्ठ यो भुङ्क्ते द्विजजन्मवान् ॥

एकादश्यां तु यो भुङ्क्ते शक्तिमान्निरुपद्रव ।

सुरापानसमं पापं भवेत्तस्य न संशयः ॥

मद्यपानात्सुरश्रेष्ठ पातैव नरकं व्रजेत् ।

एकादश्यन्नकामस्तु पितृभिस्सह मज्जाति ॥

इति । अतः पक्षद्वयेऽप्येकादश्यामुपवसेदिति भावः । एतच्च

पक्षद्वयोपवासविधानं वनस्थादिविषयम् । अत एव गोभिलः—

एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ।

वनस्थयतिधर्मोऽयं शुद्धामेव सदा गृही ॥



इति । एवं ब्रह्मचार्यादेरेपि द्रष्टव्यम् । अत एव स्मृत्यन्तरं—

एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ।

ब्रह्मचारी च नारी च शुक्लामेव सदा गृही ॥

इति । गृही पुत्रवानिति शेषः, तस्य कृष्णैकादश्यामुपवासनिषेधस्मरणात्—

सङ्क्रान्त्यामुपवासं तु कृष्णैकादशिवासरे ।

चन्द्रसूर्यग्रहे चैव न कुर्यात्पुत्रवान् गृही ॥

एकादश्यां तु कृष्णायां सङ्क्रान्तौ च रवेस्तथा ।

पारणं चोपवासं च न कुर्यात्पुत्रवान् गृही ॥

स्मृत्यन्तेरऽपि—

आदित्यवारे सङ्क्रान्त्यामसितैकादशीदिने ।

व्यतीपाते कृते श्राद्धे पुत्री नोपवसेद्गृही ॥

पुराणेऽपि—

सङ्क्रान्त्यामुपवासेन पारणेन युधिष्ठिर ।

एकादश्यां च कृष्णायां ज्येष्ठः पुत्रो विनश्यति ॥

न चैवं सति शुक्लैकादश्यां सङ्क्रान्त्यादियोगे गृहिणः पुत्रवतो नोपवास इति शङ्कनीयम् । यत आह जैमिनिः—

आदित्येऽहनि सङ्क्रान्तौ ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।

पारणं चोपवासं च न कुर्यात् पुत्रवान् गृही ॥

तन्निमित्तोपवासस्य निषेधोऽयमुदाहृतः ।

नानुषङ्गकृतो ग्राह्यो यतो नित्यमुपोषणम् ॥

इति । तन्निमित्तस्य आदित्यवारादिनिमित्तस्य प्रतिषेधः, न पुनरेकादश्यामादित्यवाराद्यन्वयनिबन्धनोपवासनिषेधः, यत एकादश्यां नित्यमुपोषणमिष्यर्थः । केचित्—अस्यैकादशीप्रकरणपाठात्तच्छब्दस्य प्रकरणसन्निहितैकादशीपरत्वादनुषङ्गकृत इत्यस्य कृच्छ्रप्राप्तोपवासपरत्वाद्वृहिणः पुत्रवतः सङ्क्रान्त्यादियुक्तायामेकादश्यामुपवासनिषेधपरमेतदिति वर्णयन्ति । तन्मन्दं—वाक्यसन्निधेः प्रकरणसन्निधितश्शीघ्रभावित्वात् । अन्यथा एकादश्यां राहुदर्शनासम्भवेन तत्र कथं तच्छब्दोपपत्तिः । अथ राहुदर्शनमात्रपरत्वं तर्हि सकृदुच्चरितस्यार्थद्वयपरत्वमिति वैरूप्यं स्यात्, अतः पूर्वोक्तैव व्याख्या ज्यायसी । अत एव नारदः—

भानुवारसमोपेता तथा सङ्क्रान्तिसंयुता ।

एकादशी सदोपोष्या पुत्रपौत्रप्रवर्धिनी ॥

पुराणेऽपि—

एकादश्यां यदा वत्स आदित्यस्य दिनं भवेत् ।

तत्रोपोष्या प्रयत्नेन पुत्रपौत्रविवर्धिनी ॥

अन्ये—गृहिणः पुत्रवतः शुक्लैकादश्यामुपवासः कृष्णैकादश्यां नियमरहितमभोजनमात्रमिति वदन्ति, तत् स्वबुद्धिमात्रपरिकल्पितमित्युपेक्षणीयम् । यत्तु नारदीयपुराणे रुक्माङ्गदस्य पुत्र-



पौत्रवतो हरिवासरमात्रोपवासनिषेधाय ब्रह्माणं प्रति यम  
वचनं—

मनुष्याः पितृभिस्सार्धं तथैव च पितामहैः ।

तेषामपीह पितरः पितृणां पितरस्तथा ॥

अथ मातामहा यान्ति तेषां ये जनकास्तथा ।

तेषामपि जनयितारो जनितृणां तु पूर्वजाः ॥

प्रयान्ति वैष्णवं लोकमुपोष्य हरिवासरम् ।

एष दण्डः पटो ह्येष तत्र पद्भ्यां नियोजितः ।

लोकपालत्वमतुलमार्जितं येन भूभुजा ।

तमेकं वदतां श्रेष्ठ सम्प्राप्ते हरिवासरे ॥

यदि चालयसे धैर्यात्ततोऽहं तव किङ्करः ॥

इति, तत्रापि हरिवासरग्रहणं रुक्माङ्गदस्य विहितैकादशीप-  
रमित्यवगन्तव्यम् । अतो गृहिणः पुत्रवतः शुक्लैकादश्यामुप-  
वासः इतरेषां तु उभयोरिति सिद्धम् । एवञ्च यदुक्तं वि-  
ष्णुधर्मोत्तरे—

ब्रह्महा स भवेत् स्तेनः सुरापो गुरुतल्पगः ।

विवेचयति यो मोहादेकादश्योस्सितासिते ॥

इति, यदापि पुराणे—

मातृहा पितृहा चैव भ्रातृहा गुरुहा तथा ।

एकादश्यां तु भुञ्जानः पक्षयोरुभयोरपि ॥

इति, तत् पुत्रवद्गृहिव्यतिरिक्तविषयमित्यनुसन्धेयम् । एवमुक्त-

रीत्या व्यवस्थासम्भवेऽपि केचित् 'न कुर्यात्पुत्रवान् गृही'  
इत्येवमादीनां काम्योपवासविषयत्वं परिकल्प्य गृहिणः पुत्र  
वतोऽपि कृष्णैकादश्यामप्युपवासं वर्णयन्ति । यदत्र युक्तं  
तद्ग्राह्यम् । यत्पुनरापस्तम्बेनोक्तं—

आहिताग्निरनङ्गांश्च ब्रह्मचारी च ते त्रयः ।

अश्रन्त एव सिद्धयन्ति नैषां सिद्धिरनश्रताम् ॥

इति, तत् एकादशीव्यतिरिक्तविषयम् । अत एवाग्निपुराणं—

गृहस्थो ब्रह्मचारी च आहिताग्निस्तथैव च ।

एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ॥

इति । यदापि पुराणे—

श्राद्धे जन्मदिने चैव सङ्क्रान्त्यां राहुसूतके ।

उपवासं न कुर्वीत यदीच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥

इति श्राद्धे उपवासनिषेधपरं च वचनं, तदप्येकादशीव्यति-  
रिक्तविषयम् । अत एव स्मृत्यन्तरं—

उपवासो यदा नित्यः श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत् ।

उपवासं तदा कुर्यादाघ्राय पितृसेवितम् ॥

इति । उपवासलक्षणं व्यासेनोक्तं—

उपावृत्तस्य पापेभ्यो यस्तु वासो गुणैस्सह ।

उपवासस्स विज्ञेयो सर्वभोगविवर्जितः ॥

इति । पापेभ्य उपावृत्तस्य गुणैरेकभक्तादिनियमैस्सह यो



वासः ताम्बूलादिभोगरहित उपवास इत्यर्थः । ते च गुणा  
नारदीयपुराणे दर्शिताः—

तस्यैवं क्रीडमानस्य मोहिन्या सह पार्थिव ।

रुक्माङ्गदस्य श्रोत्राभ्यां पटहध्वनिरागतः ॥

मत्तेभकुम्भसंस्थस्तु धर्माङ्गदमते स्थितः ।

प्रातर्हरिदिनं लोकास्तिष्ठध्वं चैकभोजनाः ॥

अक्षारलवणास्सर्वे हविष्यान्ननिषेविणः ।

अवनीतल्पशयनाः प्रियासङ्गविवर्जिताः ॥

स्मरध्वं देवमीशानं पुराणं पुरुषोत्तमम् ।

सकृद्भोजनयुक्ताश्च उपवासे भविष्यथ ॥

अष्टवर्षाधिको मर्त्यो ह्यशीतिर्न हि पूर्यते ।

यो भुङ्क्ते मामके राष्ट्रे विष्णोरहनि पापकृत् ॥

स मे वध्यश्च दण्ड्यश्च निर्वास्यो विषयाद्वहिः ।

इति । उपवासे कृते द्वादश्यामित्यर्थः । देवलोपि—

दशम्यामेकभुक्तस्तु मांसमैथुनवर्जितः ।

एकादश्यामुपवसेत्पक्षयोरुभयोरपि ॥

ब्रह्मचर्यं तथा शौचं सत्यमाभिषवर्जनम् ।

व्रतेष्वेतानि चत्वारि वरिष्ठानीति निश्चयः ॥

स्त्रीणां तु प्रेक्षणात् स्पर्शान्ताभिस्संकथनादपि ।

निष्यन्दते ब्रह्मचर्यं न दारेष्टुसङ्गमात् ॥

असकृज्जलपानाच्च सकृत्ताम्बूलचर्वणात् ।

उपवासो विनश्येत दिवास्वापाच्च मैथुनात् ॥

व्यासोऽपि—

पुष्पालङ्कारवस्त्राणि गन्धधूपानुलेपनम् ।

उपवासे न दुष्येत दन्तधावनमञ्जनम् ॥

इति । एतत् पुण्यजनकोपवासे स्त्रीविषयमिति कैश्चिदुक्तम् ।  
दन्तधावनमत्र पर्णादिना, न काष्ठेन—

उपवासे तथा श्राद्धे न खादद्दन्तधावनम् ।

दन्तानां काष्ठसंयोगः हन्ति सप्त कुलान्यपि ॥

इति तेनैवोक्तत्वात् । विष्णुरापि—‘पतितपाषण्डसंभाषणानृत  
स्तेयादिकं वर्जयेत्’ इति । कूर्मपुराणेऽपि—

कांस्यं मांसं मसूरं च चणकं कोद्रमाषकान् ।

शाकं मधु पराङ्गं च त्यजेदुपवसन् स्त्रियम् ॥

इति । उपवसन् उपवत्स्यन्नित्यर्थः । अतो दशम्यामेते नि-  
यमाः । स्मृत्यन्तरेऽपि—

असत्यभाषणं द्यूतं दिवास्वापं च मैथुनम् ।

एकादश्यां न कुर्वीत उपवासपरो नरः ॥

इति । ब्रह्माण्डपुराणेऽपि—

कांस्यं मांसं सुरां क्षौद्रं तैलं वितथभाषणम् ।

व्यवायं च प्रवासं च दिवास्वापमथाञ्जनम् ॥

तिलपिष्टं मसूरं च द्वादशैतानि वैष्णवः ।



द्वादश्यां वर्जयेन्नित्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

बृहस्पतिरपि—

दिवानिद्रां परान्नं च पुनर्भोजनमैथुने ।

क्षौद्रं कांस्यामिषं तैलं द्वादश्यामष्ट वर्जयेत् ॥

अङ्गिरा अपि—

सायमाद्यन्तयोरहोस्सायं प्रातश्च मध्यमे ।

उपवासफलप्रेप्सुर्जह्याद्रक्तचतुष्टयम् ॥

इति । न चात्र फलश्रवणात् काम्योपवासविषयमिति शङ्कनी-  
यं, नित्येऽप्युपात्तदुरितक्षयादिफलसंबन्धात् । केचित्तु—नित्ये  
फलाभावाद्यान्येकभक्तादीनि तानि—

य इच्छेद्वेष्णुसायुज्यं श्रियं सन्ततिमेव च ।

एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ॥

इत्यादिविहितकाम्योपवासविषयाणीति वर्णयन्ति । यदत्र युक्तं  
तद्वाह्यम् । अत्रोपवासग्रहणविधिमाह देवलः—

गृहीत्वौदुम्बरं पात्रं वारिपूर्णमुदङ्मुखः ।

उपवासं तु गृहीयात् यद्वा सङ्कल्पयेद्बुधः ॥

इति । औदुम्बरं ताम्रमयं पात्रं जलपूर्णं उदङ्मुखः आ-  
दाय उपवासं गृहीयात्, यद्वा सङ्कल्पयेत् सङ्कल्पमात्रं कुर्या-  
दित्यर्थः । अत्र पात्रग्रहणं प्रथमसङ्कल्पविषयं काम्योपवास-  
विषयं चेति कैश्चिदुक्तम् । सङ्कल्पमन्त्रोऽपि तेनैव दर्शितः—

एकादश्यां निराहारो भूत्वाऽहमपरेऽहनि ।  
भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष गतिर्मम भवाच्युत ॥

इति । विष्णुस्तु मन्त्रान्तरमाह—

एकादश्यां निराहारः स्थित्वाऽहमपरेऽहनि ।  
भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत ॥

इति । मन्त्रोच्चारणानन्तरं कात्यायनः—

इत्युच्चार्य ततो विद्वान् पुष्पाञ्जलिमथार्पयेत् ।

इति । एवमुपवाससमर्पणमपि द्रष्टव्यम् । तदाह नारदः—

मन्त्रमुच्चार्य यत्रेन पुष्पाञ्जलिमथार्पयेत् ।  
अज्ञानतिमिरान्धस्य व्रतेनानेन केशव ॥  
नसीद् सुमुखो नाथ ज्ञानदृष्टिप्रदो भव ।  
एवं समर्पयेद्विद्वान्पारणं समनन्तरम् ॥

इति । एतच्च सूतकादावपि कार्यम् । तदुक्तं विष्णुरहस्ये—

परमापदमापन्नो हर्षे वा समुपस्थिते ।  
सूतके मृतके वाऽपि न त्याज्यं द्वादशीव्रतम् ॥

इति । अत्र वराहपुराणोक्तो विशेषः—

सूतके तु नरस्त्रात्वा प्रणम्य मनसा हरिम् ।  
एकादश्यां न भुञ्जीत व्रतमेतन्न लुप्यते ॥  
द्वादश्यां तु ततो भुक्त्वा सूतकान्ते जनार्दनम् ।  
पूजयित्वा विधानेन पूजयेच्च द्विजोत्तमान् ॥



मृतकेऽपि न भुञ्जीत एकादश्यां सदा नरः ।  
द्वादश्यां तु समश्नीयात्स्नात्वा विष्णुं प्रणम्य च ॥

इति । उपवासाशक्तौ तु विष्णुरहस्योक्तं —

असामर्थ्ये शरीरस्य व्रते च समुपस्थिते ।  
कारयेद्धर्मपत्नीं तु पुत्रं वा विनयान्वितम् ॥

कात्यायनोपि—

पितुर्मातुर्भ्रातुरर्थे आचार्यार्थे विशेषतः ।  
उपवासं तु कुर्वाणः पुण्यं शतगुणं लभेत् ॥  
यमुद्दिश्य कृतो विद्वान् सोपि संपूर्णमामुष्यात् ।  
नारी स्वपतिमुद्दिश्य एकादश्याष्टुपोषिता ।  
पुण्यं शतगुणं प्राहुः मुनयः पारदारिणः ॥  
उपवासफलं तस्याः पतिः प्राप्नोत्यसंशयः ॥

इति । अथवा स्मृत्यन्तरोक्तं—

उपवासे त्वशक्तानामशीतेरुर्ध्वजीविनाम् ।  
एकभुक्तादिका कार्येत्याह बोधायनो मुनिः ॥

अनेनैवाभिप्रायेण मार्कण्डेयोपि—

एकभुक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ।  
उपवासेन दानेन न निर्द्वादशिको भवेत् ॥

नक्ते तु विशेषमाह व्यासः—

हृविध्यभोजनं स्नानं सत्यमाहारलाघवम् ।

अग्निकार्यमधश्शय्यां नक्तभोजी समाचरेत् ॥

इति । एवं कुर्वतः फलमाह नारदीयपुराणे वसिष्ठः—

हरिदिनमुपवासैर्यः क्षपेत् प्राप्य \* जन्तुः

न विशति जठरं विष्मूत्रपूर्णं जनन्याः ।

बहुवृजिनसमेतः कामरागाभिभूतो

व्रजति पदमनन्तं लोकनाथस्य विष्णोः ॥

इति स्मृतिचन्द्रिकायामेकादशीनिर्णयः.

अथैकादशीद्वैधनिर्णयः.

तत्र स्कन्दपुराणं—

प्रतिपत्प्रभृतयस्सर्वा उदयादोदयाद्रवेः ।

सम्पूर्णा इति विख्याता हरिवासरवर्जिताः ॥

इति । कीदृशस्तर्हि संपूर्णो हरिवासर इत्यपेक्षिते गारुड-  
पुराणं—

उदयात्प्राग्यदा विप्र मुहूर्तद्वयसंयुता ।

संपूर्णैकादशी नाम तत्रैवोपवसेद्गृही ॥

पुनः प्रभातसमये घटिकैका यदा भवेत् ।

अत्रोपवासो विहितश्चतुर्थाश्रमवासिनाम् ॥

विधवायाश्च तत्रैव परतो द्वादशी न चेत् ।

\* पुण्यमासाय.



मृतकेऽपि न भुञ्जीत एकादश्यां सदा नरः ।  
द्वादश्यां तु समश्रीयात्स्नात्वा विष्णुं प्रणम्य च ॥  
इति । उपवासाशक्तौ तु विष्णुरहस्योक्तं —  
असामर्थ्ये शरीरस्य व्रते च समुपस्थिते ।  
कारयेद्धर्मपत्नीं तु पुत्रं वा विनयान्वितम् ॥

कात्यायनोपि—

पितुर्मातुर्भ्रातुरर्थे आचार्यार्थे विशेषतः ।  
उपवासं तु कुर्वाणः पुण्यं शतगुणं लभेत् ॥  
यमुद्दिश्य कृतो विद्वान् सोऽपि संपूर्णमाप्नुयात् ।  
नारी स्वपतिमुद्दिश्य एकादश्यामुपोषिता ।  
पुण्यं शतगुणं प्राहुः मुनयः पारदार्षीनः ॥  
उपवासफलं तस्याः पतिः प्राप्नोत्यसंशयः ॥

इति । अथवा स्मृत्यन्तरोक्तं—

उपवासे त्वशक्तानामशीतेरुर्ध्वजीविनाम् ।  
एकभुक्तादिका कार्येत्याह बोधायनो मुनिः ॥

अनेनैवाभिप्रायेण मार्कण्डेयोपि—

एकभुक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ।  
उपवासेन दानेन न निर्द्वादशिको भवेत् ॥

नक्ते तु विशेषमाह व्यासः—

हविष्यभोजनं स्नानं सत्यमाहारलाघवम् ।

अधिकार्यमधश्शय्यां नक्तभोजी समाचरेत् ॥  
इति । एवं कुर्वतः फलमाह नारदीयपुराणे वसिष्ठः—  
हरिदिनमुपवासैर्यः क्षपेत् प्राप्य \* जन्तुः  
न विशति जठरं विष्णुमूत्रपूर्णं जनन्याः ।  
बहुवृजिनसमेतः कामरागाभिभूतो  
व्रजति पद्मनन्तं लोकनाथस्य विष्णोः ॥

इति स्मृतिचन्द्रिकायामेकादशीनिर्णयः.

अथैकादशीद्वैधनिर्णयः.

तत्र स्कन्दपुराणं—

प्रतिपत्प्रभृतयस्सर्वा उदयादोदयाद्वेदे ।  
सम्पूर्णा इति विख्याता हरिवासरवर्जिताः ॥  
इति । कीदृशास्ताहिं संपूर्णो हरिवासर इत्यपेक्षिते गारुड-  
पुराणं—

उदयात्प्राग्यदा विप्र मुहूर्तद्वयसंयुता ।  
संपूर्णैकादशी नाम तत्रैवोपवसेद्गृही ॥  
पुनः प्रभातसमये घटिकैका यदा भवेत् ।  
अत्रोपवासो विहितश्चतुर्थाश्रमवासिनाम् ॥  
विधवायाश्च तत्रैव परतो द्वादशी न चेत् ।

\* पुण्यमासाद्य.



मृतकेऽपि न भुञ्जीत एकादश्यां सदा नरः ।  
द्वादश्यां तु समश्नीयात्स्नात्वा विष्णुं प्रणम्य च ॥  
इति । उपवासाशक्तौ तु विष्णुरहस्योक्तं—  
असामर्थ्ये शरीरस्य व्रते च समुपस्थिते ।  
कारयेद्धर्मपत्नीं तु पुत्रं वा विनयान्वितम् ॥

कात्यायनोपि—

पितुर्मातुर्भ्रातुरर्थे आचार्यार्थे विशेषतः ।  
उपवासं तु कुर्वाणः पुण्यं शतगुणं लभेत् ॥  
यमुद्दिश्य कृतो विद्वान् सोऽपि संपूर्णमाप्नुयात् ।  
नारी स्वपतिमुद्दिश्य एकादश्यामुपोषिता ।  
पुण्यं शतगुणं प्राहुः मुनयः पारदर्शिनः ॥  
उपवासफलं तस्याः पतिः प्राप्नोत्यसंशयः ॥

इति । अथवा स्मृत्यन्तरोक्तं—

उपवासे त्वशक्तानामशीतेरुर्ध्वजीविनाम् ।  
एकभुक्तादिका कार्येत्याह बोधायनो मुनिः ॥  
अनेनैवाभिप्रायेण मार्कण्डेयोपि—

एकभुक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ।  
उपवासेन दानेन न निर्द्वादशिको भवेत् ॥  
नक्ते तु विशेषमाह व्यासः—

हविष्यभोजनं स्नानं सत्यमाहारलाघवम् ।

अग्निकार्यमधश्शय्यां नक्तभोजी समाचरेत् ॥  
इति । एवं कुर्वतः फलमाह नारदीयपुराणे वसिष्ठः—  
हरिदिनमुपवासैर्यः क्षपेत् प्राप्य \* जन्तुः  
न विशति जठरं विष्णुमूत्रपूर्णं जनन्याः ।  
बहुवृजिनसमेतः कामरागाभिभूतो  
व्रजति पदमनन्तं लोकनाथस्य विष्णोः ॥

इति स्मृतिचन्द्रिकायामेकादशीनिर्णयः.

अथैकादशीद्वैधनिर्णयः.

तत्र स्कन्दपुराणं—

प्रतिपत्प्रभृतयस्सर्वा उदयादोदयाद्वरेः ।  
सम्पूर्णा इति विख्याता हरिवासरवर्जिताः ॥  
इति । कीदृशस्तर्हि संपूर्णा हरिवासर इत्यपेक्षिते गारुड-  
पुराणं—

उदयात्प्राग्यदा विप्र मुहूर्तद्वयसंयुता ।  
संपूर्णैकादशी नाम तत्रैवोपवसेद्गृही ॥  
पुनः प्रभातसमये घटिकैका यदा भवेत् ।  
अत्रोपवासो विहितश्चतुर्थाश्रमवासिनाम् ॥  
विधवायाश्च तत्रैव परतो द्वादशी न चेत् ।

\* पुण्यमासाय.



इति । अनेन यत्र त्रयोदश्यां द्वादशी नास्ति किन्त्वेका-  
दश्येव दिनद्वययुता तत्र या संपूर्णैकादशी तस्यामुपवासं गृही  
कुर्यादपरस्यां यत्यादय इत्युक्तं भवति । उक्तं च स्मृत्य  
न्तरे—

संपूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा ।

लुप्यते द्वादशी तस्मिन्नुपवासः कथं भवेत् ॥

उपोष्ये द्वे तिथी तत्र विष्णुप्रीणनतत्परैः ।

इति । तस्मिन् त्रयोदशेऽहनि यदा द्वादशी नास्ति तदा  
पूर्वोक्ताधिकारिभेदेन द्वे तिथी उपोष्ये न त्वेकैवेत्यर्थः । अत  
एव कूर्मपुराणं—

संपूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा ।

उत्तरां तु यतिः कुर्यात्पूर्वामुपवसेद्गृही ॥

इति । अस्मिन्नेव विषये यदा त्रयोदश्यामपि द्वादशी तदा  
द्वितीयैकादश्यामेवोपवासः । तथा च भृगुः—

संपूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा ।

तत्रोपोष्या द्वितीया तु परतो द्वादशी यदि ॥

इति । उपोष्या सर्वैरिति शेषः । अत एव नारदः—

संपूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा ।

सर्वैरेवोत्तरा कार्या परतो द्वादशी यदि ॥

इति । अस्मिन्नेव विषये यदा द्वादश्यामेकादशी नास्ति  
तदा द्वादश्यामेवोपवासः । तथाच स्मृत्यन्तरं—

एकादशी भवेत्पूर्णा परतो द्वादशी यदि ।

एकादशीं परित्यज्य द्वादशीं समुपोषयेत् ॥

इति । एवञ्च यत्र दशमीशेषस्योदयात्प्राचीनमुहूर्तद्वयाननुप्रवेशः तत्रोपवासः कार्य इत्युक्तं भवति । अनुप्रवेशे तु गारुडपुराणोक्तं—

उदयात्प्राक्त्रिघटिकाव्यापिन्येकादशी यदा ।

संविद्धैकादशी नाम वज्र्या धर्मार्थकाङ्क्षिभिः ॥

पुत्रराज्यसमृद्धयर्थं द्वादश्यां समुपोषयेत् ।

तत्र क्रतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥

आदित्योदयवेलायामारब्धा षष्टिनाडिका ।

सङ्कीर्णैकादशी नाम त्याज्या धर्मफलेप्सुभिः ॥

पुत्रपौत्रप्रवृद्धयर्थं द्वादश्यामुपवासयेत् ।

तत्र क्रतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणे ॥

इति । एवञ्च यत्रैकादशी द्वादश्यां नास्ति, द्वादशी न च त्रयोदश्यां, दशमीशेषस्योदयात्प्राचीनमुहूर्तद्वयानुप्रवेशः तत्रैकादशीं परित्यज्य द्वादश्यामुपोष्य त्रयोदश्यां पारणमित्युक्तं भवति । अनेनैवाभिप्रायेण कण्वोपि—

अरुणोदयवेलायां दशमी यदि सङ्गता ।

तत्रोपोष्या द्वादशी स्यात्त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥

अरुणोदयवेलायां दशमी यदि संयुता ।

रविचक्रार्धमात्राऽपि द्वादशीमुपवासयेत् ॥



तत्र क्रतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥  
 अरुणोदयवेळायां विद्धा काचिदुपोषिता ।  
 तस्याः पुत्रशतं नष्टं तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥

भविष्यत्पुराणेऽपि—

अरुणोदयवेळायां दशमी यदि विद्यते ।  
 पापमूलं सदा ज्ञेयमेकादश्युपवासिनाम् ॥

नारदोपि—

अरुणोदयवेळायां दशमी यदि दृश्यते ।  
 न तत्रैकादशी कार्या धर्मकामार्थनाशिनी ॥

गोभिलोपि—

अरुणोदयवेळायां दशमी यदि सङ्गता ।  
 संयुक्तैकादशीपुण्यं मोहिन्यै दत्तवान्विभुः ॥  
 उदयादुपारिविद्धा दशम्यैकादशी यदा ।  
 दानवेभ्यः प्रीणनार्थं दत्तवान् पाकशासनः ॥  
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सङ्कीर्णैकादशीं त्यजेत् ।  
 द्वादश्यामुपवासोत्र त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥

अरुणोदयाभिप्रायेण नारदीयपुराणे मोहिनीवाक्यं—

अग्नेर्विहारकाले तु बध्वा उत्थापने तथा ।  
 गवां दोहनकालेऽपि पक्षिसंनदने तथा ॥  
 निर्गमे सर्ववेदानां मार्जनीग्रहणे तथा ।  
 द्वारोष्ठाटनवेळायां स्नानकाल उपस्थिते ॥

व्रतिनां दीक्षितानां च वादित्रनिनदे तथा ।  
 तथा प्रान्तो दशम्या यस्त्वेकादश्या समन्वितः ॥  
 प्रदीयतां निवासार्थं कालो विबुधसत्तमाः ।  
 तन्मोहिन्या वचः श्रुत्वा सुरास्सर्वे महीपते ॥  
 संमन्त्रय सुचिरं कालं दिगम्बरपुरोगमाः ।  
 यमस्य दर्शनार्थाय वैकुण्ठध्वंसनाय च ॥  
 पाषण्डिनां विवृद्धयर्थं पापसञ्जननाय च ।  
 ऊचुस्ते मोहिनीं देवाः लोकसंमोहनाय वै ॥  
 दत्तं मोहिनि ते स्थानं प्रत्यूषसमये हि तत् ।  
 द्रुष्टुं हरिदिनोपेतं दशम्याः प्रान्तमेव हि ॥

इति । अरुणोदयविद्धां परित्यजेदिति भावः । अरुणोद-  
 योपि पुराणे दर्शितः—

चतस्रो घटिकाः प्रातररुणोदय उच्यते ।

यतीनां स्नानकालस्तु गङ्गाम्बुसदृशः स्मृतः ॥

इति । यतयोऽत्र नियताः । तेषां स्नानकाल इति । अनेन  
 उदयात्प्राचीनं घटिकाचतुष्टयमरुणोदय इत्युक्तं भवति । अ-  
 रुणोदयामिप्रायेण नारदोपि—

दशम्याऽनुगता यत्र तिथिरेकादशी भवेत् ।

तत्रापत्यविनाशश्च परेत्य नरकं व्रजेत् ॥

विष्णुरहस्येऽपि—

दशमीशेषसंयुक्तामुपोष्यैकादशीं किल ।



संवत्सरकृतेनेह नरो धर्मेण मुच्यते ॥

दशमीशेषसंयुक्ता गान्धार्या समुपोषिता ।

तस्याः पुत्रशतं नष्टं तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥

ब्रह्मकैवर्ते ---

दशमीशेषसंयुक्तां यः करोति विमूढधीः ।

एकादशीफलं तस्य न स्याद्वादशवार्षिकम् ॥

इति । एवञ्च यानि विद्धोपवासनिषेधपराणि तानि सर्वा  
ण्यरुणोदयवेधाभिप्रायाणीति मन्तव्यम् । अत एव भविष्य-  
पुराणं—

अरुणोदयं यदा शुद्धं दशमीवेधवार्जितम् ।

सर्वदोषविनिर्मुक्तमुपोष्यं तद्दिनं स्मृतम् ॥

इति । यदा तु शुद्धमरुणोदयं वेधराहित्येन जानाति तदा  
सर्वदोषरहितं तद्दिनमुपोष्यमित्यर्थः । एवञ्च यत्कैश्चिदुक्तं  
'यानि विद्धोपवासनिषेधपराणि तान्युदयादूर्ध्वविषयाणि'  
इति, तदपास्तम् । अतो यत्र दशमीविद्धैकादशी द्वादश्यां  
नास्ति तत्र द्वादश्यामुपोष्य त्रयोदश्यां पारणं कार्यमिति  
सिद्धम् । यत्तु हारीतेनोक्तं—

त्रयोदश्यां यदा न स्याद्वादशी घटिकाद्वयम् ।

दशम्यैकादशी विद्धा सैवोपोष्या सदा तिथिः ॥

यदापि ऋष्यगृहेण—

पारणे न हि लभ्येत द्वादशी कलयाऽपि चेत् ।

तदानीं दशमीविद्धा उपोष्यैकादशी तिथिः ॥

इति, यदापि विष्णुरहस्ये—

दशमीशेषसंयुक्ता उपोष्यैकादशी तथा ।

यदा न स्यात्त्रयोदश्यां मुहूर्ते द्वादशी तिथिः ॥

इति, एतत्सर्वमेकादशीदिनक्षयविषयम् । अत एव नारदः—

दशमीशेषसंयुक्ता नोपोष्यैकादशी तिथिः ।

एकादश्यां रात्रिशेषे द्वादशी चेन्न दृश्यते ॥

इति । यदैकादशीदिवसे क्षयो न भवति तदा दशमीविद्धा नोपोष्येत्यर्थः । अनेनैकादशीदिनक्षये दशमीविद्धोपोष्येतद-  
र्थादुक्तं भवति । उक्तं च तेनैव—

यदि दैवात्तु संसिध्येदेकादश्यां तिथित्रयम् ।

तत्र ऋतुशतं पुण्यं द्वादश्यां पारणं भवेत् ॥

कूर्मपुराणे—

द्विस्पृगेकादशी यत्र तत्र सन्निहितो हरिः ।

तामेवोपवसेत्काममकामो विष्णुतत्परः ॥

दशमीं द्वादशीं च या स्पृशति सा द्विस्पृक् । पुराणेऽपि—

दिनक्षयमृते देवि नोपोष्या दशमीयुता ।

सैवोपोष्या सदा पुण्या परतश्चेत्त्रयोदशी ॥

इति । यदैकादशीदिनक्षयः त्रयोदश्यां च न द्वादशी तदैव दशमीविद्धोपोष्या नान्यथेत्यर्थः । अनेन यस्मिन् दिनक्षये



त्रयोदश्यामपि द्वादशी तस्मिन्नैवोपवसेदित्यर्थादुक्तं भवति ।  
अत एव व्यासः—

एकादशी यदा लुप्ता परतो द्वादशी भवेत् ।

उपोष्या द्वादशी तत्र यदीच्छेत्परमां गतिम् ॥

लुप्ता क्षयं गता । परतः त्रयोदश्यामित्यर्थः । यत्तु गोभि-  
लेनोक्तं—

एकादश्यां यदा ब्रह्मन् दिनक्षयतिथिर्भवेत् ।

तदा ह्येकादशीं त्यक्त्वा द्वादश्यामुपवासयेत् ॥

तत्र ऋतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणम् ।

इति, यदापि पितामहेन—

एकादश्यां यदा वत्स दिनक्षयतिथिर्भवेत् ।

अत्रोपोष्यां द्वादशी स्यात्त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥

इति, तत् पुत्रवद्वृहिविषयं, तस्यैव दिनक्षयोपवासनिषेधात् ।

तथाच मत्स्यपुराणं—

दिनक्षयेऽर्कसङ्क्रान्त्यां ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।

उपवासं न कुर्वीत पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥

व्यासोपि—

एकादशीषु नष्टास्तु रविसङ्क्रमणेषु च ।

पारणं चोपवासं च न कुर्यात्पुत्रवान् गृही ॥

इति । पितामहोपि—

एकादशीदिनक्षय उपवासं करोति यः ।

तस्य पुत्रा विनश्यन्ति मघायां पिण्डदो यथा ॥

इति । एवञ्च यानि विद्धोपवासनिषेधपराणि तानि सर्वा-  
ण्येकादशीदिनक्षयव्यातिरिक्तविषयाणीति मन्तव्यम् । उक्तं च  
पुराणे—

दिनक्षयमृते देवि नोपोष्या दशमीयुता ।

इति । अनेनैवाभिप्रायेण कूर्मपुराणेऽपि—

कलार्धेनापि विद्धा स्याद्दशम्यैकादशी यदा ।

तदा ह्येकादशीं त्यक्त्वा द्वादशीं समुपोषयेत् ॥

द्वादश्यामुपवासोत्र त्रयोदश्यां तु पारणम् ।

व्यासोपि—

दशमीमिश्रिता पूर्वा द्वादशी यदि लुप्यते ।

एकादश्यां महाप्राज्ञ उपवासः कथं भवेत् ॥

शुद्धैव द्वादशी राजन्नुपोष्या मोक्षकाङ्क्षिभिः ।

पारणं तु त्रयोदश्यां पूजयित्वा जनार्दनम् ॥

स्कन्दपुराणेऽपि—

शुद्धं हरिदिनं न स्यात् द्वादशीं ग्राहयेत्ततः ।

द्वादश्यामुपवासोत्र त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥

एवं कुर्वन्नरो भक्त्या विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ।

अन्यथा कुरुते यस्तु स याति नरकं ध्रुवम् ॥

इति । एवं वेधसन्देहेऽपि द्रष्टव्यम् । अत एव कूर्मपुराणं—

बहुवाक्यविरोधेन सन्देहो जायते यदा ।



द्वादशी तु तदा ग्राह्या त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥  
 इति । एवञ्च यत्र दशमीविद्धैकादशी द्वादश्यां नास्ति द्वा-  
 दशी च त्रयोदश्यां, तत्र द्वादश्यामुपोष्य त्रयोदश्यां पारणं  
 कार्यमित्युक्तं भवति । अस्मिन्नेव विषये यदा द्वादश्याम-  
 प्येकादशी तदा द्वितीयैकादश्यामेवोपवासः । तथाच नारदः—

द्वादश्यैकादशी यत्र संगतां त्रिदशाधिप ।

तामुपोष्य ततः कुर्यात्त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥

इति । बोधायनोपि—

कलाऽप्येकादशी यत्र परतो द्वादशी न चेत् ।

तत्र क्रतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥

पुराणेऽपि—

द्वादशीमिश्रिता ग्राह्या सर्वत्रैकादशी तिथिः ।

द्वादशी च त्रयोदश्यां विद्यते यदि वा न वा ॥

इति । अस्मिन्विषये यदा त्रयोदश्यामपि द्वादशी तदा द्वि-  
 तीयैकादश्यामेवोपवासः । तथाच नारदीयपुराणं—

द्वादश्येकादशी यत्र द्वादशी परतोपि वा ।

द्वादशीपारणं कुर्यात्क्रतुकोटिफलं भवेत् ॥

पुराणेऽपि—

एकादशीकलायुक्ता येन द्वादश्युपोषिता ।

किं तस्य बहुभिर्यज्ञैरश्वमेधादिभिर्नृप ॥

एकादशी द्वादशी च तत्र संनिहितो हरिः ।

उपोष्य रजनीमेकां ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥

इति । अस्मिन्नेव विषये द्वादश्यामेकादशी नास्ति तदा  
द्वादश्यामेवोपवासः । तथाच नारदीयपुराण—

उपोष्या द्वादशी शुद्धा द्वादश्यामेव पारयेत् ।

निर्गता चेत्त्रयोदश्यां कला वा द्विकलाऽपि वा ॥

इति । द्वादशीदिनक्षये कूर्मपुराणे—

एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी ।

त्रिभिर्मिश्रा तिथिः कार्या सर्वपापहरा स्मृता ॥

उपवासः कृतस्तस्यां महापातकनाशनम् ।

एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी ॥

तत्र ऋतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणम् ।

स्कन्दपुराणेऽपि—

द्वादशीसंगता यत्र भवत्येकादशी तिथिः ।

दिनक्षयेऽपि सा पुण्या निरस्या न कथञ्चन \* ॥

इति । यत्तु वृद्धशातातपेनोक्तं—

दशम्यैकादशी विद्धा द्वादशी च क्षयं गता ।

क्षीणा सा द्वादशी ज्ञेया नक्तं तत्र विधीयते ॥

यदपि विष्णुधर्मोत्तरे—

एकादशी यदा विद्धा द्वादशी च क्षयं गता ।

क्षीणा सा द्वादशी ज्ञेया नक्तं तत्र विधीयते ॥

\* न दशम्या कथञ्चन ॥ इति पाठान्तरम् ।



इति, तत् पुत्रवद्गृहिविषयं, तस्यैव दिनक्षयोपवासनिषेधात् ।  
तथाच मत्स्यपुराणं—

एकादशी द्वादशी च विशेषेण त्रयोदशी ।

उपवासं न कुर्वीत पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥

नन्वेनोपवासो निषिध्यते न नक्तविधानम् । मैवं, निषिद्धस्यो-  
पवासस्य वायुपुराणे नक्तविधानात् ।

उपवासनिषेधे तु भक्ष्यं किञ्चित्प्रकल्पयेत् ।

न दुष्यत्युपवासेन उपवासफलं लभेत् ॥

इति । भक्ष्यप्रकल्पनमपि तत्रैवानन्तरमुक्तं—

नक्तं हविष्यान्नमनोदनं वा यवास्तिलाः क्षीरमथाम्बुवाज्यम्  
यत्पञ्चगव्यं यदि वाऽपि वायुः प्रशस्तमत्रोत्तरमुत्तरं च ॥

इति । एवञ्च यदुक्तं व्यासेन—

एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी ।

द्वादश द्वादशीर्हन्ति त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥

इति, तत् पुत्रवद्गृहिविषयमित्यनुसन्धेयम् । ननु च यानि  
त्रयोदशीपारणपराणि तेष्वेव 'तत्र क्रतुशतं पुण्यम्' इत्या-  
दिफलश्रवणात्, तानि काम्योपवासाभिप्रायाणि, विद्धोपवा-  
सविधिपराणि तु नित्योपवासविषयाणीति व्यवस्था किं न  
स्यात् । मैवं,

यदि दैवा तु संसिद्धये देकादश्यां तिथित्रयम् ।

तत्र क्रतुशतं पुण्यं द्वादशीपारणे कृते ॥



द्वादश्येकादशी यत्र द्वादशी परतोपि च ।

द्वादशीपारणं कुर्यात्क्रतुकोटिफलं भवेत् ॥

इति द्वादशीपारणेऽपि फलश्रवणाविशेषात् । किञ्च—

सर्वत्रैकादशी कार्या द्वादशीमिश्रिता नरैः ।

प्रातर्भवतु वा मा वा यतो नित्यं हि पारणम् ॥

पारणं तु त्रयोदश्यां निष्कामानां विमुक्तिदम् ।

इत्यादिषु त्रयोदशीपारणस्यापि नित्यत्वश्रवणाच्च । अतो नेयं  
फलश्रुतिः, अपित्वर्थवाद इति मन्तव्यम् । केचित्तु—

शुद्धैव द्वादशी राजन्नुपोष्या मोक्षकाङ्क्षिभिः ।

पारणं तु त्रयोदश्यां पूजयित्वा जनार्दनम् ॥

इति वचनाद्यतीनामेव मोक्षकाङ्क्षित्वात्तद्विषयाण्येव शुद्धद्वाद-  
श्युपवासविधिपराणि । विद्धोपवासविधिपराणि तु गृहस्थवि-  
षयाण्येवेति व्यवस्थापयन्ति । तन्मन्दं, स्वर्गादिफलस्य भङ्गि-  
त्वेन सर्वेषामपि मोक्षकाङ्क्षित्वाविशेषात् । किञ्च—

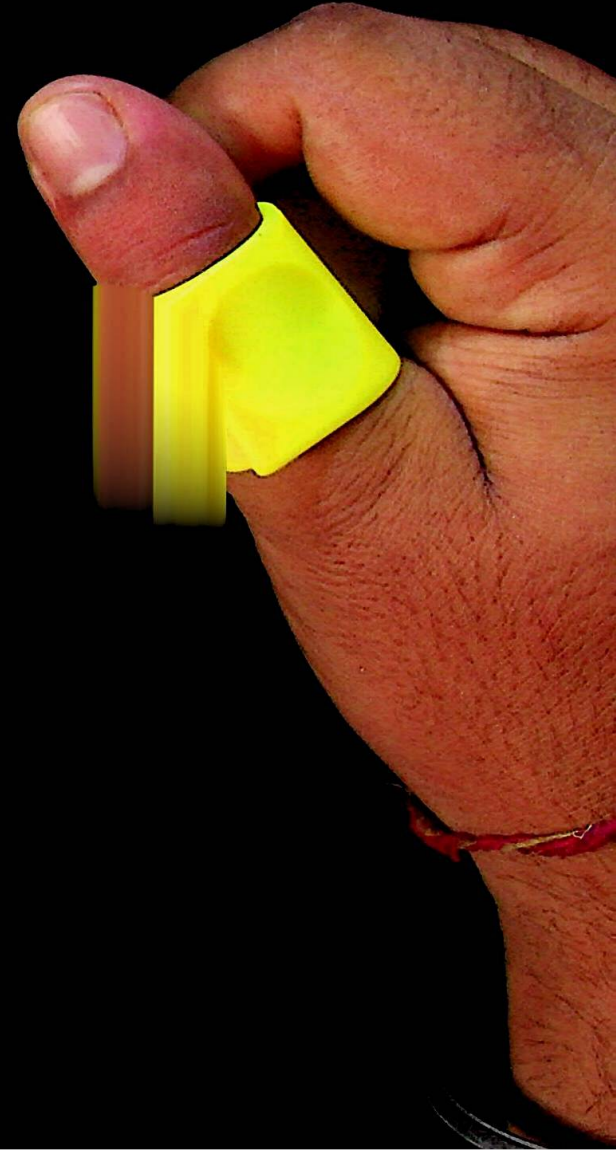
उपोष्या सर्वदा शुद्धा द्वादशी तु द्विजोत्तमैः ।

क्षत्रैर्वैश्यैस्तथा शूद्रैः किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥

इति शुद्धद्वादश्युपवासे यतिव्यतिरिक्तानामप्यधिकारदर्शनात् ।  
तथा—

एकादशी दिशा विद्धा परतो न निवर्तते ।

गृहिभिर्यतिभिश्चैव सैवोपोष्या सदा तिथिः ॥





इति मत्स्यपुराणे यतीनामपि विद्धोपवासविधानाच्च । यदन्यैरुक्तं—

संपूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा ।

उत्तरां तु यतिः कुर्यात्पूर्वामुपवसेद्गृही ॥

इत्यत्र यतीनां त्रयोदश्यां पारणदर्शनात्तद्विषयाण्येव त्रयोदशीपारणपराणि, विद्धोपवासविधिपराणि तु गृहस्थविषयाण्येवेति, तदपि पूर्वोक्तवचनद्वयेनैवापास्तमित्युपेक्षणीयम् । अपरे तु विद्धोपवासविधिपराण्यरुणोदयवेधविषयाणि, द्वादश्युपवासविधिपराणि तूदयादूर्ध्वविषयाणीति मन्यन्ते, तदपि त्रयोदशीपारणविधिविरुद्धमित्युपेक्षणीयम् । ननु च कथं त्रयोदश्यां पारणं? यावता कूर्मपुराणे—

एकादश्यामुपोष्यैव द्वादश्यां पारणं स्मृतम् ।

त्रयोदश्यां न तत्कुर्याद्द्वादशद्वादशीक्षयात् ॥

इति त्रयोदशीपारणनिषेधात् । श्रीविष्णुरहस्येऽपि—

पारणं तु न कर्तव्यमुपोष्यैकादशीमिह ।

त्रयोदश्यां नरैर्नित्यं धर्मवृद्धिमभीप्सुभिः ॥

इति । स्मृत्यन्तरेऽपि—

दशम्यनुगता हन्ति द्वादशद्वादशीफलम् ।

धर्मापत्यधनायूषि त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥

इति । उच्यते—सत्यमेवं, तथाऽपि यत्र त्रयोदश्यां द्वादशी-



संभवः तत्र तामतिक्रम्य त्रयोदश्यां पारणं न कार्यमित्येवं-  
परं, न पुनः शुद्धत्रयोदश्याम् । अत एव कूर्मपुराणं—  
यदा भवति चाल्पा तु द्वादशी पारणे दिने ।  
उपःकाले द्वयं कुर्यात्प्रातर्माध्याह्निकं तथा ॥

नारदीयपुराणेऽपि—

अल्पायामथ त्रिप्रेन्द्र द्वादश्यामरुणोदये ।  
स्नानार्चनक्रियाः कुर्याद्दानहोमादिसंयुताः ॥  
त्रयोदश्यां तु शुद्धायां पारणं पृथिवीफलम् ।  
शतयज्ञाधिकं वाऽपि नरः प्राप्नोत्यसंशयः ॥  
एतस्मात्कारणाद्विप्राः प्रत्यूषे स्नानमाचरेत् ।  
पितृतर्पणसंयुक्तमल्पां दृष्ट्वैव द्वादशीम् ॥  
महाहानिकरी ह्येषा द्वादशी लङ्घिता नृणाम् ।  
करोति धर्महरणमस्नातेव सरस्वती ॥

न च—

यां तिथिं समनुप्राप्य उदयं याति भास्करः ।  
सा तिथिस्सकला ज्ञेया स्नानदानजपादिषु ॥  
इति देवलवचनाद्द्वादश्यतिक्रमेऽपि न दोष इति शङ्कनीयम् ।  
यत आह नारदीयपुराणे वसिष्ठः—

पारणे मरणे नृणां तिथिस्तात्कालिकी स्मृता ।

इति । यस्मिन् काले पारणं मरणं वा तत्र तात्कालिक्येव  
तिथिः न पुनः सा तिथिस्सकला ज्ञेयेत्येतद्भवतीत्यर्थः । यत्र



पुनस्त्रयोदश्यां कलामात्रैव द्वादशी तत्र पुराणोक्तं—

त्रयोदश्यां यदा राजन् द्वादश्यास्तु कला भवेत् ।

सा तिथिस्सकला चेति वसिष्ठः ग्राह धर्मवित् ॥

इति । एवञ्च यानि त्रयोदशीपारणनिषेधपराणि तानि त्रयोदश्यां द्वादशीसम्भवविषयाणीति सिद्धम् । यानि पुनः—

कला काष्ठा मुहूर्त वा यदि चेदपरेऽहनि ।

द्वादश द्वादशीर्हन्ति त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥

इति, त्रयोदश्यां द्वादशीसम्भवमनूद्य पारणनिषेधपराणि, तानि

विद्वाऽप्येकादशी ग्राह्या परतो द्वादशी न चेत् ।

द्वादश द्वादशीर्हन्ति त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥

इत्यादिभिस्समानार्थानीत्यनवद्यम् । एवञ्च यत्कैश्चिदुक्तं त्रयोदश्यां द्वादशीसम्भवेऽपि त्रयोदशीपारणं न दोषायेति, तदपास्तम् ॥

इति स्मृतिचन्द्रिकायां एकादशीद्वैधनिर्णयः.

एवं प्रसक्तमनुप्रसक्तं च परिसमाप्याधुना प्रकृता  
पराह्मनिर्णयः क्रियते.

तत्र शातातपः—

दर्शश्राद्धं तु यत्प्रोक्तं पार्वणं तत्प्रकीर्तितम् ।



अपराह्णे पितृणां च तत्र दानं प्रशस्यते ॥

अपराह्णोपि पञ्चधाविभक्तस्याहश्चतुर्थो भाग इत्याह व्यासः—

मुहूर्तत्रितयं प्रातः तावानेव च सङ्गवः ।

मध्याह्नस्त्रिमुहूर्तस्स्यादपराह्णोपि तादृशः ॥

सायाह्नस्त्रिमुहूर्तस्तु सर्वकर्मवाहिष्कृतः ।

इति । वाजसनेयश्रुतिरपि—‘आदित्यो वै सर्वा ऋतवस्स

यदैवोदेत्यथ वसन्तो यदा सङ्गवोऽथ ग्रीष्मो यदा मध्य-

न्दिनोऽथ शरद्यदाऽपराह्णस्तदा वर्षा यदाऽस्तमेत्यथ हेमन्तः’

इति । श्रुत्यन्तरे तु त्रेधा विभक्तस्याहस्तृतीयभागेऽपराह्णशब्दः

प्रयुक्तः—‘पूर्वाह्णो वै देवानां मध्यंदिनं मनुष्याणामपराह्णः

पितृणाम्’ इति । मनुस्तु द्वेधा विभक्तस्याहो द्वितीयभागेऽप-

राह्णशब्दमाह—

यथा चैवापरः पक्षः पूर्वपक्षाद्विशिष्यते ।

तथा श्राद्धस्य पूर्वाह्णादपराह्णो विशिष्यते ॥

स्कन्दपुराणेऽपि—

आवर्तनात्तु पूर्वाह्णो ह्यपराह्णस्ततः परः ।

इति । आवर्तनावाधेः पूर्वाह्ण इत्यर्थः । एवमनेकधाऽपराह्ण-

शब्दप्रयोगेऽपि मनूक्त एवापराह्णशब्दार्थः स्वीक्रियते ।

शुक्लपक्षस्य पूर्वाह्णे श्राद्धं कुर्यात् द्विजोत्तमः ।

कृष्णपक्षापराह्णे तु रौहिणं तु न लङ्घयेत् ॥

इति मार्कण्डेयेन द्वेधा विभक्तस्याहो द्वितीयभागे श्राद्धवि-



धानात्, तथा रौहिणं तु न लङ्घयेदिति चतुर्थभागादवगमेव समाप्तिविधानाच्च । रौहिणो नवमो मुहूर्तः । किञ्च—

भूतविद्धा त्वमावास्या प्रतिपन्मिश्रिताऽपि वा ।

पित्रचे कर्मणि विद्वद्भिः ग्राह्या कुतपकालिकी ॥

इति हारीतः श्राद्धाङ्गत्वेन कुतपकालं विधत्ते, तदपि न ख्यात् । ननु नानेन कुतपकालस्य श्राद्धाङ्गत्वमवगम्यते । मैवं, कुतपकालिकीग्रहणाविधेः दृष्टार्थत्वायाङ्गत्वस्यैवोचितत्वात् । उक्तं च पुराणे—

कुं यत्र गोपतिर्गोभिः कात्स्न्येन तपति क्षणे ।

स कालः कुतपो नाम शाद्धं तत्र प्रदीयते ॥

इति । कुः पृथ्वी । गोपतिः सूर्यः । अत्र यत्कैश्चिदुक्तं 'एकोदिष्टं तु मध्याह्ने' इति वचनात्कुतपकालविधानमेकोदिष्टविषयमेवेति, तदनेन दर्शश्राद्धेऽपि कुतपकालविधानेनापास्तम् । न चैवं सति कुतपापराह्णविध्योर्विकल्पस्यादिति शङ्कनीयं, कुतपोत्तरार्धस्यापराह्णान्तर्भावात् । कुतपो हि नाम पञ्चदशमुहूर्तात्मकस्याहोऽष्टमो मुहूर्तः । तथाच मत्स्यपुराणं—

अहो मुहूर्ता विख्याता दश पञ्च च सर्वदा ।

तत्राष्टमो मुहूर्तो यः स कालः कुतपस्मृतः ॥

इति । वायुपुराणेऽपि—

मुहूर्तात्सप्तमादूर्ध्वं मुहूर्तान्नवमादधः ।

स कालः कुतपो नाम पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥



इति । एवञ्च यदपराह्णे विहितं तदपराह्णान्तर्गतकुतपे कार्यं विधीयत इत्यविरोधः । एतदपि प्रारम्भाभिप्रायम् । तदाह मत्स्यः—

मध्याह्ने सर्वदा यस्मान्मन्दीभवति भास्करः ।

तस्मादनन्तफलदस्तत्रारम्भो विशिष्यते ॥

गौतमोपि—

प्रारभ्य कुतपे श्राद्धं कुर्यादारौहिणं बुधः ।

विधिज्ञो विधिमास्थाय रौहिणं तु न लङ्घयेत् ॥

इति । एतच्च कुतपादिश्राद्धविधानमनग्निकविषयं, साग्नेः कुतपिण्डापितृयज्ञस्यैव मनुना श्राद्धविधानात् ।

पितृयज्ञं तु निर्वर्त्य विप्रश्चन्द्रक्षयेऽग्निमान् ।

पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं कुर्यान्मासानुमासिकम् ॥

इति पिण्डापितृयज्ञस्याप्यपराह्णकालत्वेन श्राद्धस्य कुतपादि त्वासम्भवादिति भावः । न च

पितृयज्ञं तु निर्वर्त्य तर्पणाख्यं तु योऽग्निमान् ।

पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं कुर्यादिन्दुक्षये सदा ॥

इति मत्स्यपुराणवचनात्पितृयज्ञशब्दः तर्पणाख्यापितृयज्ञपर इति साग्नेरापि कुतपाद्येव श्राद्धमिति शङ्कनीयं,

पक्षान्तं कर्म निर्वर्त्य वैश्वदेवं च साग्निकः ।

पिण्डयज्ञं ततः कुर्यात्ततोऽन्वाहार्यकं बुधः ॥

इति लौगाक्षिणा साग्नेः पिण्डापितृयज्ञानन्तरमेव श्राद्धविधा-



नात् । अतस्तर्पणशब्दोपि कथञ्चित्पिण्डपितृयज्ञपर इत्यवग-  
न्तव्यम् । एवञ्च यत्र श्राद्धदिने चन्द्रदर्शनेन पिण्डपितृय-  
ज्ञप्राप्तिः तत्राग्निमान् कृत्वैव पिण्डपितृयज्ञं श्राद्धं कुर्यात् ।  
अन्यथा तु साग्रेरपि कुतपाद्येव श्राद्धमित्यनुसन्धेयम् । ननु  
कुतपादिरौहिणान्तत्वाच्छ्राद्धकालस्य तस्य च कर्मद्वयापर्याप्तत्वा-  
त्कथमग्निमच्छ्राद्धस्यापि पिण्डपितृयज्ञानन्तर्यम् । मैवं, मत्स्य-  
पुराणे रौहिणादुपर्यपि कालविधानात्—

ऊर्ध्वं मुहूर्तं कुतपाद्यन्मुहूर्तचतुष्टयम् ।

मुहूर्तपञ्चकं ह्येतत्स्वधाभवनमिष्यते ॥

इति कुतपादिमुहूर्तपञ्चकं श्राद्धस्याङ्गमित्यर्थः । यत्तु यमेनोक्तं-  
चतुर्थे प्रहरे प्राप्ते यश्श्राद्धं कुरुते नरः ।

आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं दाता च नरकं व्रजेत् ॥

इति, तत् चतुर्थप्रहरे प्राप्ते सति योऽन्तिमे मुहूर्तत्रये श्राद्धं  
करोति तस्य दोष इत्येवंपरं, न पुनः प्रहरनिषेधपरं पूर्वोक्तं  
मत्स्यपुराणवचनविरोधात् । उक्तं च तत्रैव—

सायाह्नस्त्रिमुहूर्तस्याच्छ्राद्धं तत्र न कारयेत् ।

राक्षसी नाम सा वेळा गर्हिता सर्वकर्मसु ॥

इति । यदपि कात्यायनोक्तं—

पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं क्षीणे राजनि शस्यते ।

वासरस्य तृतीयेऽंशे नातिसन्ध्यासमीपतः ॥

इति, तदपि कूर्मपुराणवचनविरोधात् 'वासरस्य तृतीयेऽंशे



नातिसन्ध्यासमीपतः' इति दिनान्तिमे मुहूर्तत्रये न कार्यमित्येवं-  
परं, न पुनार्विशेषेण तृतीयांशे विधिपरमिति । यदापि व्या-  
घ्रपादवचनं—

विधिज्ञश्श्राद्धयोपेतः सम्यक्पात्रनियोजकः ।

रात्रेरन्यत्र कुर्वाणः श्रेयः प्राप्नोत्यसंशयम् ॥

इति, तदप्युक्तयुक्तैव नाहर्मात्रविधिपरमिति सर्वमनवद्यम् ।

रात्रिनिषेधस्य क्वचिदपवादमाह विष्णुः—

सन्ध्यारात्रयोर्न कर्तव्यं श्राद्धं खलु विचक्षणैः ।

तयोरपि च कर्तव्यं यदि स्याद्राहुदर्शनम् ॥

इति । अत्र शातातपः—

कालातीतं तु यत् कुर्याच्छ्राद्धं होमं जपं तथा ।

व्यर्थीभवति तत्सर्वं अमृते तु विषं यथा ॥

इति स्मृतिचन्द्रिकायमपराहनिर्णयः.

अथान्यान्यपि श्राद्धकालविषयाणि कानिचिद्वचनानि  
लिख्यन्ते.

तत्र विष्णुधर्मोत्तरे मार्कण्डेयः—

उत्तरादयनाद्राजन् श्रेष्ठं स्यादक्षिणायनम् ।

याम्यायनाच्चतुर्मासं तत्र सुप्ते तु केशवे ॥

प्रोष्ठपद्मपरः पक्षः तत्रापि च विशेषतः ।



पञ्चम्यूर्ध्वं तु तत्रापि दशम्यूर्ध्वं ततोपि च ॥

मघायुक्ताऽपि तत्रापि शस्ता राजन् त्रयोदशी ।

इति । श्राद्धकालेषूदगयनादक्षिणायनं श्रेष्ठं याम्यायनादक्षिणायनादित्यर्थः । तत्र दक्षिणायने केशवे सुप्ते सति मासचतुष्टयं श्रेष्ठं, याम्यायनेऽप्याषाढी पौर्णमासीमारभ्य मासचतुष्टयं श्रेष्ठमिति यावत् । तत्रापि प्रोष्ठपदमासस्यापरपक्षो विशेषतः श्रेष्ठः । तत्रापि पञ्चम्या ऊर्ध्वं दर्शान्तानि दिनानि श्रेष्ठानि । तत्रापि दशम्या ऊर्ध्वं पञ्चदिनानि श्रेष्ठानि । तेष्वपि मखानक्षत्रयुक्ता त्रयोदशी अतिप्रशस्तित्यर्थः । आदिसपुराणेऽपि—

आषाढीमवधिं कृत्वा यस्यात्पक्षस्तु पञ्चमः ।

श्राद्धं तत्र तु कुर्वीत कन्यां गच्छतु वा न वा ॥

पञ्चमे पक्षे सूर्यः कन्याराशिं गच्छतु वा न वेत्यर्थः । अत्र न वेति पक्षः कन्यागतत्वाभावेऽपि तत्र श्राद्धं कुर्वीतेति विधातुं नोक्तं, किन्तु पञ्चमः पक्षः कन्यागतसूर्यरहितोपि श्रेष्ठः किं पुनस्तत्सहित इति दर्शयितुमिति मन्तव्यम् । अत एव शाब्द्यायनिः—

नभस्यस्यापरे पक्षे तिथिषोडशकस्तु यः ।

कन्यागतान्वितश्चेत्स्यात्स कालः श्राद्धकर्मणि ॥

इति । तिथिषोडशक इति कदाचित्पक्षवृद्धेः षोडशादिनात्मकोपि नभस्यस्यापरः पक्षः श्राद्धकर्मणि कालो न तु तत्र



पञ्चदशदिनात्मक एवेति दर्शयितुमुक्तम् । यद्वा अमावास्या-  
या अनन्तरभूता या प्रतिपत्तिथिः तस्या अपि सङ्ग्रहणार्थं  
तिथिषोडशक इत्युक्तं, प्रतिपदोपि क्षीणचन्द्रत्वेनापरपक्षतु-  
ल्यत्वात् । न चैवं वाच्यं, नभस्यस्यापरे पक्षे कन्यागते  
सूर्ये सति तद्दिनात्प्रभृति तिथिषोडशकं श्राद्धकालस्यादि-  
त्यनेन प्रतिपाद्यत इति । यत आह वृद्धमनुः—

मध्ये वा यदि वाऽप्यन्ते यत्र कन्यां रविर्व्रजेत् ।

स पक्षस्सकलः पूज्यः श्राद्धं तत्र विधीयते ॥

इति । यत्र यस्मिन् पञ्चमे पक्षे यत्रकुत्रचित्कन्यागते सवि-  
तरि सति सकलस्स पक्षः श्राद्धे प्रशस्ततरकालः । तेन  
तत्र प्रतिदिनमेकस्मिन्वा दिने शक्यनुसारेण श्राद्धं कर्त-  
व्यमित्यवगन्तव्यम् । तथा चादित्यपुराणं—

पक्षान्तरेऽपि कन्यास्थे रवौ श्राद्धं प्रशस्यते ।

कन्यागते पञ्चमे तु विशेषेणैव कारयेत् ॥

पक्षान्तरेऽपि पञ्चमपक्षात् पक्षान्तरेऽपीत्यर्थः । पञ्चमपक्षस्य प्र-  
शस्ततरत्वं 'विशेषेणैव कारयेत्' इत्यनेनोक्तम् । अनेनैवाभि-  
प्रायेण जातूकर्ण्यः—

आकाङ्क्षन्ति स्म पितरः पञ्चमं पक्षमाश्रिताः ।

तस्मात्तत्रैव दातव्यं दत्तमन्यत्र निष्फलम् ॥

प्रशस्तकाले दत्तमत्यन्ताधिकफलसाधकमित्यर्थः । किं पुनः  
प्रशस्ततरकाले दत्तस्य फलमित्यपेक्षिते कार्पाजिनिः—





पुत्रानायुस्तथाऽऽरोग्यमैश्वर्यमतुलं तथा ।

प्राप्नोति पञ्चमे दत्त्वा श्राद्धं कामांश्च पुष्कलान् ॥

पुराणेऽपि—

कन्यागते सवितरि यान्यहानि तु षोडश ।

ऋतुभिस्तानि तुल्यानि पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥

इति । तदेतच्छाव्यायनिवचनेन समानार्थतया व्याख्येयम् ।

प्रशस्ततरकालातिक्रमे दोषोपि कार्ष्णाजिनिना दर्शितः—

प्रेतास्तं चैव हिंसन्ति पञ्चमं यो व्यतिक्रमेत् ।

तस्मान्नातिक्रमेद्विद्वान्पञ्चमे पैतृकं विधिम् ॥

यदा तु पञ्चमे पक्षे कथञ्चिदेतच्छ्राद्धं न कृतं तदा त्वाह

समन्तुः—

कन्याराशौ महाराज यावत्तिष्ठेद्विभावसुः ।

तस्मात्कालाद्भवेदेयं वृश्चिके यावदागतः ॥

येयं दीपान्विता राजन् ख्याता पञ्चदशी भुवि ।

तस्यां दद्यान्न चेदत्तं पितॄणां वै महालये ॥

इति । महालये महालयाख्ये पञ्चमे पक्षे पितॄणां पितृभ्यो

न दत्तं चेत्तदा कन्याराशौ यावद्विभावस्तुस्तिष्ठेत्तावदन्यस्मि-

न्पक्षेऽपि दद्यात् । तस्मात्कालात्कन्यागतसूर्यान्वितकालात्प-

श्चात्तुलाराशिगतसूर्यान्वितेऽपि श्राद्धं देयं भवेत् । तत्रापि

काले यदि कथञ्चिन्न दत्तं तदा दीपावळ्याख्यायां पञ्च-

दश्यां दद्यादित्यर्थः । पुराणेऽपि—

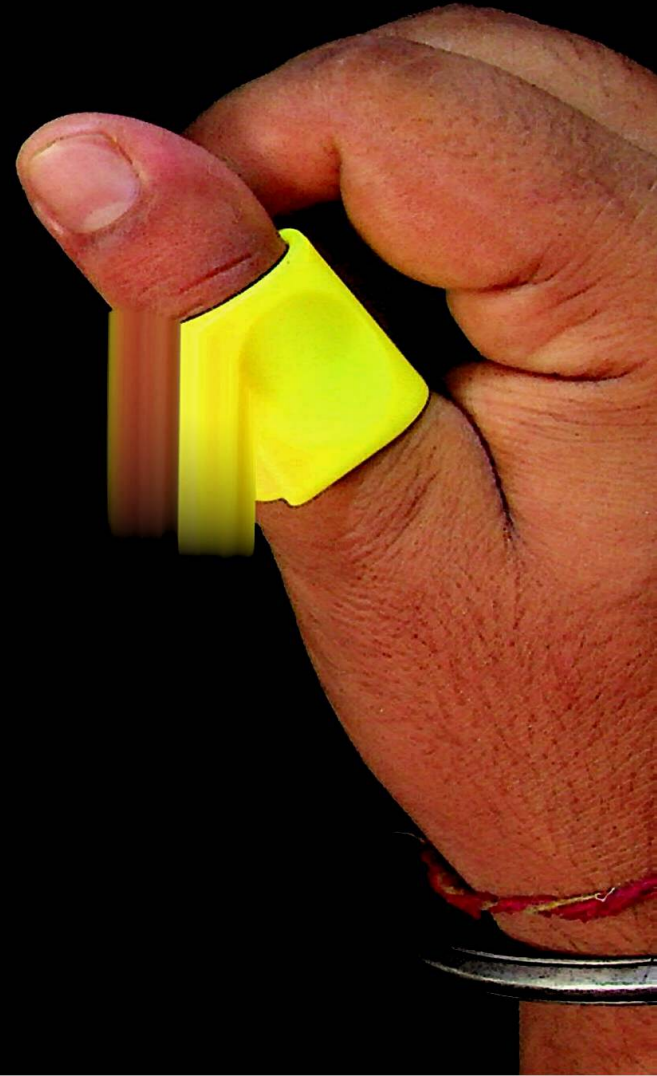


कन्यागते सवितरि पितरो यान्ति वै सुतान् ।  
 शून्या प्रेतपुरी सर्वा यावदृश्चिकदर्शनम् ॥  
 ततो दृश्चिकसम्प्राप्तौ निराशाः पितरो गताः ।  
 पुनस्स्वभवनं यान्ति शापं दत्वा सुदारुणम् ॥  
 सूर्ये कन्यागते कुर्याच्छ्राद्धं यो न गृहाश्रमी ।  
 धनं पुत्राः कुतस्तस्य पितृनिश्वासपीडनात् ॥

आदित्यपुराणेऽपि—

प्रावृष्यतौ यमः प्रेतान् पितृंश्चाथ यमालयात् ।  
 विसर्जयित्वा मानुष्ये कृत्वा शून्यं स्वकं पुरम् ॥  
 क्षुधाऽऽर्ताः कीर्तयन्तश्च दुष्कृतं च स्वयंकृतम् ।  
 काङ्क्षन्तः पुत्रपौत्रेभ्यः पायसं मधुसंयुतम् ॥  
 तस्मात्तांस्तत्र विधिना तर्पयेत्पायसेन तु ।  
 मध्वाज्यतिलमिश्रेण तथा शीतेन चाम्भसा ॥  
 ग्रासमात्रं परगृहादन्नं यः प्राप्नुयान्नरः ।  
 भिक्षामात्रेण यः प्राणान् संधारयति वा स्वयम् ॥  
 यो वा संवर्धयेद्देहं प्रत्यहं स्वात्मविक्रयात् ।  
 श्राद्धं तेनापि कर्तव्यं तैस्तैर्द्रव्यैस्सुसञ्चितैः ॥

इति । यमालयात्प्रेतान् पितृंश्च विसर्जयित्वा स्वकं पुरं शून्यं  
 कृत्वा मनुष्यलोके प्रावृषि भाद्रपदमासकृष्णपक्षप्रभृति याव-  
 दृश्चिकदर्शनं वासयति तावदित्यध्याहृतेन सम्बन्धः । क्षुधाऽऽ-





र्ताः प्रेताः पितरस्तिष्ठन्तीत्यध्याहृतेन सम्बन्धः । विधिना त  
र्पयेत्पुत्र इति शेषः । चतुर्विंशतिमतेऽपि—

आचार्यगुरुशिष्येभ्यः साखिज्ञातिभ्य एव च ।

तत्पत्नीभ्यश्च सर्वाभ्यस्तथैव च जलाञ्जलीन् ॥

पिण्डदानं च तेभ्यस्तु दद्याद्भाद्रपदे नरः ।

तीर्थेषु चैव सर्वेषु माघमासे तथैव च ॥

एकस्मिन् ब्राह्मणे सर्वानाचार्यादीन् प्रपूजयेत् ।

दश द्वादश पिण्डांश्च दद्यादकरणं न तु ॥

नियामको विधिर्नूनं पक्षे वै पञ्चमे स्मृतः ।

तस्मिन् दत्तं हविर्नूनं पितृणामक्षयं भवेत् ॥

इति । एकस्मिन् ब्राह्मणे इत्यसमर्थविषयम् । समर्थस्तु स्वसाम-  
र्थ्यानुसारेण प्रत्येकमेकैकस्मिन् ब्राह्मणे आचार्यादीन् सर्वान्  
एकस्मिन् दिने प्रपूजयेत् । एकैकमाचार्यादिकं एकैकस्मिन्वा  
दिने प्रपूजयेत् । तत्र यदा प्रथमः पक्षः स्वीक्रियते तदा एकपाकेन  
समानतन्त्रमाश्रित्य प्रपूजयेत् । तथा च भृगुणा—

एककाले गतासूनां बहूनामथवा द्वयोः ।

तन्त्रेण श्रपणं कृत्वा कुर्याच्छ्राद्धं पृथक्पृथक् ॥

पूर्वकस्य मृतस्यादौ द्वितीयस्य ततः पुनः ।

तृतीयस्य ततः कुर्यात्..... ॥

इत्युक्तवोक्तं—सन्निपातेष्वयं क्रमः ॥ इति । सन्निपातेषु सम-  
समये नानाश्राद्धेषु कर्तव्यतयाऽऽपतितेषु अयं क्रमः तन्त्रेण



श्रपणं कृत्वा ज्येष्ठानुक्रमेण श्राद्धानुष्ठाने क्रमोऽनुसन्धेय इत्यर्थः । अत्र यदुक्तं स्मृत्यर्थसारे 'एक पाको वैश्वदेवं तन्नं पिण्डं वार्हिश्रैकम्' इति, तत्र वैश्वदेवं तन्नमिति चिन्त्यं आचार्यगुरुशिष्यसखिज्ञात्यादीनामेकोद्दिष्टविधानेनैव श्राद्धं कार्यमिति स्मृतिवचनेरुक्तत्वात् । तत्र वैश्वदेवासम्भवात् 'नवमिश्रपुराणानीति त्रिविधान्येकोद्दिष्टानि' इत्युक्तत्वेन सर्वैकोद्दिष्टेषु दैवं नास्तीति स्मृत्यर्थसार एवोक्तत्वाच्च । स्मृतिवचनानि त्वदूरे दर्शयिष्यामः । यमोप्यसमर्थं प्रत्याह—

हंसे वर्षासु कन्यास्थे शाकेनापि गृहे वसन् ।

पञ्चभ्योरन्तरे दद्यादुभयोरपि पक्षयोः ॥

वर्षासु प्रावृषि हंसे सूर्ये कन्याराशिस्थे पञ्चमपक्षस्य पञ्चमीप्रभृत्यनन्तरपक्षस्य पञ्चमीपर्यन्तदिवसेष्वन्यतमे दिवसे यथासम्भवं गृही पितृभ्यो दद्यादित्यर्थः । पञ्चभ्योरन्तरे चतुर्दशीव्यातिरिक्त इति शेषः । तदाह मरीचिः—

विषशस्त्रश्चापदाहितिर्यग्ब्राह्मणघातिनाम् ।

चतुर्दश्यां क्रिया कार्या अन्येषां तु विगर्हिता ॥

विषादिब्राह्मणान्तैः कृतः घातः एषां ते विषशस्त्रश्चापदाहितिर्यग्ब्राह्मणघातिनः । क्रिया श्राद्धक्रिया एकोद्दिष्टविधानेनेति शेषः । तथाच सुमन्तः—

समत्वमागतस्यापि पितुश्शस्त्रहतस्य तु ।

एकोद्दिष्टं सुतैः कार्यं चतुर्दश्यां महालये ॥



समत्वमेकत्वमागतस्यापि कृतसपिण्डीकरणस्यापीत्यर्थः । शस्त्रह-  
तस्य पितुः महालये चतुर्दश्यामेकोद्दिष्टश्राद्धे कृतेऽपि दिनान्-  
तरे पार्वणश्राद्धं कार्यम्, एकोद्दिष्टश्राद्धेन पितामहादितृ-  
प्तयसिद्धेः । नन्वेवं मृताहेऽप्येकोद्दिष्टश्राद्धे कृते पार्वणश्राद्ध-  
मपि पितामहादितृप्तिसिद्धयर्थं कर्तव्यं स्यात् । मैवम्, पि-  
तृमृताहे पितामहादेस्तर्पणीयत्वास्मरणेन तत्तृप्तयर्थं श्राद्धस्या  
ननुष्ठेयत्वात् । महालयप्रकरणे—

काङ्क्षन्ति पुत्रपौत्रेभ्यः पायसं मधुसंयुतम् ।

तस्मात्तांस्तत्र विधिना तर्पयेत्पायसेन तु ॥

मध्वाज्यतिलमिश्रेण ..... ॥

इति पितामहादेरपि तर्पणीयत्वस्मरणात् तत्तृप्तये दिनान्तरे  
पार्वणश्राद्धं कार्यमेव । यस्य तु पितामहोपि शस्त्रादिना हतः  
तस्य महालये पितामहश्राद्धमपि चतुर्दश्यामेकोद्दिष्टरूपं का-  
र्यम् । तथाच स्मृत्यन्तरं—‘एकस्मिन् द्वयोर्वैकोद्दिष्टविधिः’  
इति । एकस्मिन् पितरि शस्त्रादिना हते द्वयोर्वा पितृपि-  
तामहयोः चतुर्दश्यामेकोद्दिष्टविधिना प्रत्येकं श्राद्धं कार्यमि-  
त्यर्थः । द्वयोरेकोद्दिष्टविधानेन प्रत्येकं श्राद्धे कृते प्रपिताम-  
हत्तृप्तिसिद्धयर्थं दिनान्तरे पार्वणश्राद्धं कार्यम्, ‘एकस्मिन्  
द्वयोर्वा’ इत्यभिधानात् । त्रिषु पितृपितामहप्रपितामहेषु श-  
स्त्रादिनिहतेषु नैकोद्दिष्टविधिरिति गम्यते । तेषु त्रिषु शस्त्रा-  
भिहतेषु चतुर्दश्यां पार्वणविधिरेव । युक्तं चैतत्, सपिण्डी-



कृतानां शस्त्रादिहतानां त्रयाणामपि चतुर्दशीरूपविहितकाल  
सम्भवेऽपि विहितकालसम्भवनिवन्धनैकोद्दिष्टविधेरनवतारात् ।  
अनेनैवाभिप्रायेणापरार्केणाप्युक्तं—‘तत्र चैकस्य शस्त्रहतत्वे  
एकोद्दिष्टविधानं न तु त्रयाणां तथात्वे तत्र तु पार्वणमेव’  
इति । त्रयाणां तथात्वे शस्त्रहतत्वे नैकोद्दिष्टविधानं, किन्तु  
पार्वणमेवेति तस्यार्थः । देवस्वामिना तु त्रिष्वपि शस्त्रहतेषु  
पृथगेकोद्दिष्टत्रयमेव कार्यं, आहत्य वचनाभावात् पार्वणमि-  
त्युक्तम् । यदत्र युक्तं तद्ग्राह्यम् । यत्पुनः शाकटायनेनोक्तं—

जलाग्निभ्यां विपन्नानां संन्यासे वा गृहे पथि ।

श्राद्धं कुर्वीत तेषां वै वर्जयित्वा चतुर्दशीम् ॥

इति, तत् प्रायश्चित्तार्थं विहितजलाग्न्यादिकृतमरणयुक्तविष-  
यम् । ये हि पापमृत्यवः तेषामेव जलाग्न्यादिविपन्नानां च-  
तुर्दशी ग्राह्या,

वृक्षारोहणलोहाद्यैर्विद्युज्ज्वालाविषादिभिः ।

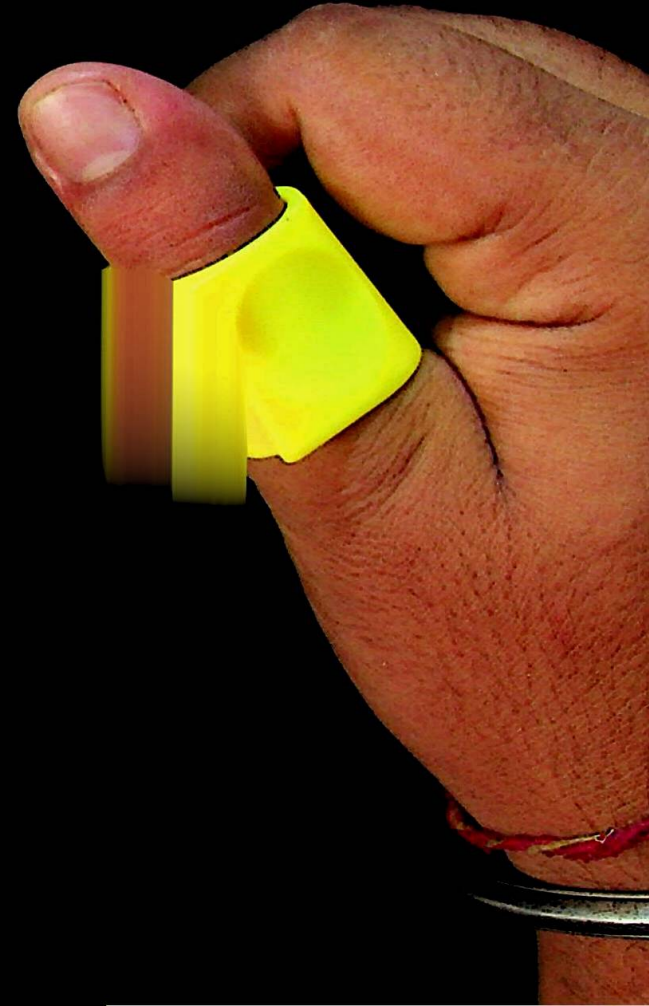
नखिदंष्ट्रिविपन्नानां तेषां शस्ता चतुर्दशी ॥

इति प्रचेतसो वचनेन विद्युज्ज्वालादिसमभिव्याहारेण पाप-  
मृत्मूनां चतुर्दशी शस्त्यवगमात् । एतेषामपि मृताहादौ य-  
च्छ्राद्धं तत्पार्वणविधानेनैव कार्यं,—

चतुर्दश्यां तु यच्छ्राद्धं सपिण्डीकरणात्परम् ।

एकोद्दिष्टविधानेन तत्कार्यं शस्त्रघातिनः ॥

इति गार्ग्यस्मरणात् । शस्त्रघातिने यदाऽऽपरपक्षिकश्राद्धं च-





तुर्दश्यां क्रियते, तत्रैवैकोद्दिष्टविधानेन नान्यदेत्यर्थः । न च शस्त्रादिहतानां कथञ्चिच्चतुर्दश्यतिक्रमे विहितकालातिक्रमे श्राद्धस्याकरणमेवेति वाच्यं, प्रशस्ततरकालालाभेऽपि महालय-श्राद्धस्यानुष्ठानमावश्यकमिति प्राग्दर्शितत्वात् । ततश्च शस्त्रहता-नामपि प्रशस्ततरपञ्चमपक्षचतुर्दश्यतिक्रमे पार्वणविधानेनैव दि-नान्तरेऽपि कार्यम् ।

सङ्क्रान्तावुपरागे च वर्षोत्सव \* महालये ।

निर्वपेदत्र पिण्डांस्त्रिन्..... ॥

इति प्रजापतिस्मरणात् । सङ्क्रान्त्यादावपि अपुत्रस्यैकोद्दिष्टमेव । यथाऽऽह गर्गः—

अपुत्रा ये मृताः केचित् स्त्रियो वा पुरुषास्तथा ।

तेषामपि च देयं स्यादेकोद्दिष्टं न पार्वणम् ॥

इति । स्त्रियो भगिन्यादयः । पुरुषाः भ्रात्रादयः । तथाच सुमन्तुः—

सपिण्डीकरणादूर्ध्वं यत्र यत्र प्रदीयते ।

भ्रात्रे भगिन्यै पुत्राय स्वामिने मातुलाय च ॥

मित्राय गुरवे श्राद्धमेकोद्दिष्टं न पार्वणम् ।

इति । यत्र यत्र सङ्क्रान्त्युपरागवर्षोत्सव\*महालयगयादौ भ्रात्रादिभ्यः प्रदीयते तदैकोद्दिष्टविधानेन कर्तव्यमित्यर्थः । कात्यायनोपि—



सम्बन्धिवान्धवादीनामेकोद्दिष्टं तु सर्वदा ॥

इति । यत्तु जातूकर्ण्येन सपिण्डीकरणं प्रकृत्योक्तं—

अत ऊर्ध्वं न कर्तव्यमेकोद्दिष्टं कदाचन ।

सपिण्डीकरणान्तं च तत्प्रोक्तमिति मुद्गलः ॥

प्रेतत्वं चैव निस्तीर्णः प्राप्तः पितृगणं तु सः ।

च्यवते पितृलोकात्तु पृथक्पिण्डेन योजितः ॥

सपिण्डीकरणादूर्ध्वं पृथक्त्वं नोपपद्यते ।

पृथक्त्वे तु कृते पश्चात् पुनः कार्या सपिण्डता ॥

इति, यच्च कार्ण्वाजिनिना—

अत ऊर्ध्वं न कर्तव्यमेकोद्दिष्टं कदाचन ।

सपिण्डीकरणान्तं च प्रेतस्यैतदमङ्गलम् ॥

यच्च यमेन—

यस्सपिण्डीकृतं प्रेतं पृथक्पिण्डेन योजयेत् ।

विधिघ्नस्तेन भवति पितृहा चोपजायते ॥

एकमुद्दिश्य यद्दानं प्रेतकर्म तदुच्यते ।

पितृभ्यो दीयते श्राद्धमाहुस्तत्र द्विजोत्तमाः ॥

इति, यच्च पुराणे—

प्रदानं यत्र यत्रैषां सपिण्डीकरणात्परम् ।

तत्र पार्वणवच्छ्राद्धमेकोद्दिष्टं त्यजेद्बुधः ॥

इति, तदेतत्सर्वं प्रातिपद्येनैकोद्दिष्टविध्यभावे द्रष्टव्यम् । ननु—

मघायुक्ता तु तत्रापि शस्ता राजन् त्रयोदशी ।

